योग

ऋगवेद आदि
भाष्य भूमिका
के आधार पर

अनुवादक

स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती
आचार्य गुरुकुल घरौंडा

आर्य प्रकाशन
८१४ कूण्डे वालान अजमेरी गेट दिल्ली

स्तुता मया वरदा वेदमा[illegible]
चोदयन्तां पावमानी द्विज[illegible]
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व०१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक-पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

भा. पु.

ओ३म्

महर्षि दयानन्द

का

योग

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के आधार पर

स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती

आचार्य गुरुकुल घरौंडा

द्वारा

सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद

प्रकाशक

आर्य प्रकाशन

८१४ कूण्डे वालान अजमेरी गेट दिल्ली

प्रथम बार

मूल्य २.००

महर्षि दयानन्द के "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" नामक ग्रन्थ में उपासना-प्रकरण दिया है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनेक प्रकरण वेद-वाक्यों या या श्रुतियों पर अवलम्बित है, किन्तु उपासना-प्रकरण की एक विशेषता है— इस प्रकरण में ग्रन्थकार ने महर्षि पतञ्जलि के योग-सूत्रों को न केवल उद्धृत किया है, उन सूत्रों की प्रकरणानुसार व्याख्या भी की है, महर्षि केवल राजयोग के पोषक थे, न कि हठयोग अथवा अन्य पद्धतियों के जो आज योग के नाम से जनता में प्रचलित हैं। योग के आठ अंग हैं, जिनमें यमों का पालन अनिवार्य माना गया है, इन्हें महाव्रत कहा गया है। इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि की योग प्रणाली सदाचार और आस्तिकता पर निर्भर है।

योग का आधार यजुर्वेद और अथर्ववेद के कतिपय मन्त्र और सूक्त हैं। योग का विषय मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। योग का उद्देश्य प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चमत्कारों का प्रदर्शन नहीं है। योगी परमात्मा की कृति में पूर्ण आस्था रखता है, और उसे प्रभु से अनन्त प्यार है। योग की चरम सीमा निर्विकल्प और असम्प्रज्ञात समाधियों में है। समाधियों की इस स्थिति तक पहुंचना जीवन की चरम साधना है। योग का विषय अभ्यास और वैराग्य पर अवलम्बित है। यह परम साधना का विषय है। केवल आसनों की सिद्धि का नाम योग नहीं है। चित्त की वृत्तियों पर विजय प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है।

चित्त की वृत्तियों का सुन्दर उल्लेख "शिव-संकल्प" सूक्त में है। श्रुति का प्रतिपादित यह मन केवल भौतिक मन ही नहीं है, यह अन्त:जगत् को बाह्यजगत् से सम्बद्ध करने वाली समस्त चेतना है, जो प्रभु के प्रसाद से हमें प्राप्त हुई है। योग का विषय श्रुति, उपनिषद्, और दर्शन तीनों का ध्येय है। केवल सैद्धान्तिक ऊहापोह का नाम ही योग नहीं, यह सतत अभ्यास और ईश्वर प्रतिष्ठान का मार्ग है।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने योग-सूत्रों के ऋषिभाष्य को हमारे समक्ष सरल और सुगम रूप में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। मुझे विश्वास है, कि इस पुस्तिका से आर्यजगत् को न केवल सन्तोष होगा, योग के मार्ग में उसे प्रेरणा भी मिलेगी।

२ अगस्त १९७६

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

विषय सूची

ओ३म्

इदं श्रेष्ठं भाष्यं यतिवर दयानन्द रचितम्,
परं भाषा भाष्यं न कथयति भावं मुनिमतं।
अतो भाषा टीका सरल जन ज्ञेया च विहिता।
विनश्येयुर्दोषाः विविध मत मूढैः किल कृताः।

भाषाः--यह पुस्तक महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना प्रकरण का है। इसका संस्कृत भाष्य महर्षि कृत है। किन्तु इसकी पहली हिन्दी टीका महर्षि के भावों को प्रकट नहीं करती थी। अतएव सरल जन भी योगविद्या का भाव जान सकें इस हेतु मैंने ऋषि के संस्कृत भाष्य के समक्ष उसी पंक्ति में हिन्दी टीका की है। इस लघु पुस्तक के प्रकाशित होने पर वैदिक योग का स्वरूप स्पष्ट प्रकट हो जायेगा और नाना मतों के मतवारे मूर्खों ने जो योग का स्वरूप विगाड़ दिया है वह नष्ट हो जावेगा। ऐसी मेरी आशा है।

स्वामी रामेश्वरानन्द
आचार्य सरस्वती
गुरुकुल घरोंड़ा

महर्षि महिम्ना हिन्दी शिखरिणी छन्द

दयानन्द स्वामी निगम पथ तैंने फिर दिया।
खजानों वेदों का तिलक कर भावों भर दिया॥
सभी पाखण्डों का दलन ऋषि तैंने कर दिया।
अविद्या निद्रा से सजग नर नारी कर दिया॥१॥

महात्मन् भाष्यों से निगम पथ निन्दा हट गयी।
अनादि वेदों की शशि सम छवि भी बढ़ गयी॥
स्वदेशी पोपों की कल्पित कथा भी हट गयी।
विदेशी धूर्तों की श्रुति गत कुछाया कट गयी॥२॥

पुरानी भी रोये नगन मत नंगा कर दिया।
इसाई भी चीखे यवन मत फीका कर दिया॥
पढ़ें कन्या सारी दलित पढ़ने को कह दिया।
लिखा है वेदों गुरुकुल सुचालू कर दिया॥३॥

विदेशी जो राजा जनक जननी भी नहिं भला।
स्वदेशी हो राजा सकल सुखदाता अति भला॥
कहा तैंने स्वामिन तब सब विदेशी दिल हिला।
भगे गोरे सारे स्वजन पट चन्दा सम खिला॥४॥

पिता माता सेवा जल थल न पूजें हम कभी।
जड़ों को पूजें ना नतु कबर पूजें हम सभी॥
न माने पन्ने की मृतक नहि देंगे बलि कभी।
करें सन्ध्या सारे हवन करते हैं अब सभी॥५॥
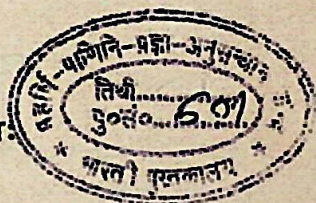
शिखरिणी छन्दे स्तुतिः

चिदानन्दः स्वामी प्रणव पद नामी निगमदः ।
नियन्ता सर्वेषां तनु भुवन कर्त्ता विभुतमः ।
दधात्येतान् लोकान् गमयति च सृष्टिं प्रतिदिनं ।
नमस्तें तस्मै मे विविध विध विश्वं विजयते ।।१।।

।। भाषा शिखरिणी छन्द स्तुति ।।

चिदानन्द स्वामिन् निगम पथ दाता सब तुही ।
अजन्मा न्यायी भी अखिल जग ज्ञाता सब तुही ।
निराकारो नेता तनु भुवन कर्त्ता अज तुही ।
अनन्तानादी भी अमर अविनाशी सब तुही ।।२।।

दया का कर्त्ता तू सकल फल दाता विभुतमः ।
वही अन्तर्यामी अजर सुख राशि सकलगः ।
सखा स्वामी भ्राता जनक जननी भी सब तुही ।
नमस्ते ओं नामी अनुपम सु सर्वेश्वर तुही ।।३।।

॥ ओ३म् ॥

महर्षि कृत प्राक् कथन

॥ ग्रन्थकार का ईश नमन शार्दूल विक्रीडित छन्द में ॥

ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृतमजं सत्यं परं शाश्वतं,
विद्या यस्य सनातनी निगमभृत् वैधर्म्यविध्वन्सिनी।
वेदाख्या विमलाहिताहि जगतो नृभ्यः सुभाग्यप्रदा,
तन्नत्वा निगमार्थं भाष्य मतिना भाष्यं तु तत् तन्यते।

अर्थ—जो ब्रह्म अनन्त अनादि, विश्व सृष्टा और स्वयं अजन्मा अतएव सत्यशाश्वत पर सर्वश्रेष्ठ और जिसकी सनातन वेद विद्या अधर्म नाशक तथा जगत् के मानव मात्र के लिए हितकर तथा सौभाग्य की दाता है उसको नम्रभाव से नमस्ते करके निगम के अर्थानुकूल मति से यह ऋग्वेदादि भाष्य किया जाता है।

॥ भाष्य की तिथि अनुष्टुप् छन्द में ॥

कालरामांक चन्द्रेऽब्दे भाद्र मासे सिते दले।
प्रतिपदादित्यवारे भाष्यारम्भ कृतो मया।

अर्थ—विक्रमी सम्वत् १८३३ भादों मास प्रतिपदा शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन मैंने (श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने) इस ऋग्वेदादि भाष्य का आरम्भ किया है।

शिखरिणी छन्द में भाष्यकार स्वयं अपना परिचय देते हैं।

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः।
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति हिताहीशशरणा॥
इयं ख्यातिर्यस्य प्रतत सुगुणा वेद मनना-
स्त्यनेनेदं भाष्यं रचितमिति बोद्धव्यमनघाः॥

अर्थ—जो दया का आनन्द अथवा जिसकी दया ही आनन्द है तथा परमात्मा एवं स्वात्मा को जान कर प्रसन्न होता है और जिसके नाम के आगे सरस्वती वास करती है एवं जो सदा ईश्वर की शरण में बसता है यह ख्याति प्रसिद्धि जिस की है वेदमनन करनेवाले सुगुणयुक्त अनघ निष्पाप जनों यह जानो कि उसने यह वेद भाष्य रचा है अर्थात् स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने यह वेद भाष्य रचा है ।

अथ स्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्रः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।
यजु० अ० ३ मं० ३ ॥

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप	हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप
हे परम कारुणिक हे अनन्तविद्य	हे परम कृपा के सागर हे अनन्त विद्या युक्त
हे विद्या विज्ञान प्रद हे सवित:	हे विद्या विज्ञान के दाता हे सविता
हे सकल जगदुत्पादक	हे सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर
न: अस्माकं विश्वानि सर्वाणि	आप न: हमारे विश्वानि
दुरितानि दु:खानि	सर्व दुरितानि दु:खों एवं सर्व
सर्वदुष्ट गुणाश्च परासुव	दुष्टगुणों को परासुव
दूरे गमय यद् भद्रं	दूर कर के यद् जो भद्रं
यत् कल्याणं सर्वदु:खरहितं	कल्याण जो कि सर्व दु:ख रहित है
सत्यविद्या प्राप्याभ्युदय	सत्य विद्या की प्राप्ति से अभ्युदय
नि:श्रेयस सुखकरं	मोक्ष का सुख कारक
भद्रमस्ति तन्न:	जो भद्रं कल्याण है तद् वह न:
अस्मभ्यं आसुव आसमन्तादु	हमारे लिये-आ-अच्छे प्रकार
त्पादय कृपया प्रापय	सुव उत्पन्न करो कृपा कर प्राप्त करा । दो

॥ विराट ब्रह्म की स्तुति ॥

वस्तुतः ब्रह्म व्यापक है उसका जीवों के समान कर्मजन्य शरीर तो नहीं है किन्तु वेद ब्रह्म का आलंकारिक रूप से जगत् को शरीर मानकर वर्णन करता है अतः उपासक जगत् के सूर्यादि को ब्रह्म के नेत्रादि माने क्योंकि जैसे जीव अपने अंग प्रत्यंगों से कार्य करता है एवं ब्रह्म विश्व से कार्यविश्व का संचालन करता है। जैसे जीव के अंग प्रत्यंग जीव के वश में हैं इसी प्रकार विश्व ब्रह्म के वश में है जैसे जीव देह के भीतर वास करता है एवं ब्रह्म विश्व में वास करता है।

॥ ईश स्तुतिः ॥

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्टति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० का० १० सू० ८ मं० १

भाष्यं—यो भूतं भविष्यत् वर्त्तमान	जो परमेश्वर भूत भविष्य वर्त्तमान
कालान् सर्वं जगच्चाधि-	कालों को तथा सर्व जगत् में स्थित तथा
तिष्ठति सर्वाधिष्ठाता सन्	सर्वविश्व का अधिष्ठाता होता हुआ
कालादूर्ध्वंऽविराजमानोस्ति	काल के भी ऊपर वर्त्तमान हो रहा है
यस्य च केवलं निर्विकार स्वः	तथा जिसका केवल निर्विकार स्वः
सुख स्वरूपमस्ति यस्मिन्	सुख स्वरूप है एवं जिसमें कि
दुःखं लेशमात्रमपि नास्ति	दुःख लेशमात्र भी नहीं है जो कि
यदानन्दघनं ब्रह्मास्ति तस्मै	आनन्दघन ब्रह्म है उस
ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय ब्रह्मणे	ज्योष्ठाय सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मणे
महतेऽत्यन्तनमोऽस्तु	महान् ब्रह्म के लिये नमो नमस्तेऽस्तु हो

भावार्थ—अर्थात् परमेश्वर भूत भविष्य वर्त्तमान में जो भी जगत् है उन सबका अधिष्ठाता तथा सुखमय आनन्द स्वरूप है उसका आदर भाव नमस्ते करना चाहिये।

॥ स्तुति ॥

ओ३म् यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरं दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः। अथर्व० का० १० सू० ८ मं० २।

भाष्यं—यस्य भूमिः प्रमा यथार्थ ज्ञान	जिस ब्रह्म के ज्ञान में भूमि प्रमा-यथार्थ ज्ञान का
साधनं पादाविवास्ति	साधन है पादौ-पैरों के समान है
अन्तरिक्षं यस्योदर तुल्यमस्ति	तथा जिसने अन्तरिक्ष को उदर के तुल्य धारण किया है
यश्च सर्वमांद्रूर्ध्वं	तथा जो सबसे ऊपर वर्तमान
सूर्य रश्मि प्रकाशमयमाकाश दिव्यं	तथा जिसने सूर्य रश्मियों को एवं आकाश को
मूर्द्धानं शिरोवच्चक्रे	तथा द्यु को मूर्द्धा शिरवत् धारण
कृतवानस्ति तस्मै	किया है तस्मै उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को मेरा नमः नमस्कार नम्र भाव हो।

भावार्थ—अर्थात् जिस ब्रह्म ने भूमि को पैरों के समान, अन्तरिक्ष को उदर तुल्य एवं द्युलोक को मूर्द्धा शिर के समान धारण किया है उस ब्रह्म को मेरा पुनः पुनः नमो नमस्ते आदर भाव हो।

स्तुति

ओ३म्यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमा च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै
ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः। अथर्व० कां १० सूक्त ७ मं० ३३।

यस्य सूर्यचन्द्रमा च	यस्य-जिसके सूर्य चन्द्रमा
पुनः पुनः सर्गादौ नवीने	पुनः पुनः सृष्टि रचना काल में नवीन-नवीन
चक्षुषी इव भवतः योऽग्नि-	चक्षु नेत्रों के तुल्य हैं तथा यः जिसने

मास्यं मुखवद् चक्रे कृतवान् अस्ति तस्मै ब्रह्मणे नमोऽस्तु ।	अग्निम् वह्नि शक्ति मुखवत् धारण की है तस्मै उस ब्रह्मणे महान् ब्रह्म को मेरा नमो नमस्तेऽस्तु ।

भावार्थ—गत मन्त्र में भूमि को ब्रह्म के पाद, अन्तरिक्ष उदर द्यु मूर्धा शिर मानकर वर्णन किया है तथा इसमें सूर्यचन्द्र को ब्रह्म के नेत्र तथा अग्नि को मुखवत् माना है अर्थात् नेत्रों से रूपवान् वस्तु का दर्शन होता है एवंमेव प्रकाश के बिना नेत्र भी व्यर्थ हैं अतः सूर्यचन्द्र के प्रकाश ही में नेत्र देखते हैं तथा जैसे सर्वभोज्य वस्तु को मुख से खाते हैं एवं अग्नि देव सर्व भोज्य वस्तु का हवन के रूप में भक्षण करता है और मुख भोजन को चबाकर उदर को दे देता है और उदर सब शरीर को रस रक्त बनाकर पुष्ट करता है एवं अग्नि सुगन्ध वस्तु को भस्म करके वायु को देती है और वायु सर्व संसार को बाँट देता है ।

॥ स्तुति ॥

ओ३म् यस्य वातः प्राण पानौ चक्षु रंगिरसाऽभवन् ।
दिशोस्यश्चक्रे प्रज्ञानीस्त मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व का० १० सू० ७ मं० ३४

यस्य वातः समष्टिर्वायुर्यस्य	यस्य जिसके वातः समष्टिवायु
प्राणापानाविवास्ति	प्राणापानौ प्राण और अपान के
अंगिरस	सदृश हैं
अंगिरा अंगारा अंकना	तथा अंगिरा अंकना अंगारा
इतिनिरुक्ते अ० ३ खं० १७	आग के प्रकाशित खण्ड ज्वाला
प्रकाशिका किरणाश्चक्षु षी इव	मुखी तथा प्रकाशक किरण चक्षु के समान हैं
भवतः यो दिशः प्रज्ञानी प्रज्ञापनी	तथा जिसने दिशाओं को प्रज्ञानी
व्यवहार साधिकाश्चक्रे तस्मै	ज्ञान के साधक किए हैं
ह्यनन्तविद्याय	उस अनन्त विद्या के भण्डार

महते ब्रह्मणे सततं नमोऽस्तु	महान् ब्रह्म के लिए नमस्ते है पुनःपुनः आदर भाव हो

भावार्थ—जैसे वायु प्राणों से जीव जीते हैं प्राण के विना कोई जीव जी नहीं सकता एवं वायु के विना सारा जड़ चेतन जगत् चल नहीं सकता अर्थात् जड़ सूर्यादि भी वायु से जीते हैं तथा दिशा ज्ञान का साधन हैं दिशाओं में ही सर्व विश्व वास करता है।

॥ ईश स्तुतिका लाभ निम्न मन्त्र में है ॥

ईश्वरोपासना का लाभ आत्मज्ञान, वल एवं मोक्ष और उपासना न करने से जन्म मृत्यु के चक्र में पड़े रहना।

ओ३म् य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य० अ० २५ मं० १३।

य आत्मदा-विद्याविज्ञानप्रदः	जो विद्या विज्ञान का दाता तथा
वलदा यः शरीरेन्द्रिय प्राणात्मा	वलदा जो शरीर इन्द्रिय प्राण आत्मा
मनसां पुष्टयुत्साह पराक्रम दृढ़त्व	एवं मन की पुष्टि उत्साह पराक्रम दृढ़त्व
प्रदः। यस्य यं विश्वे देवा सर्वे	का दाता तथा यस्य जिसकी सर्व देव
विद्वांस उपासते यस्यानुशासनं	विद्वान् उपासना करते हैं तथा आज्ञा
च मन्यन्ते। यस्य-यस्याश्रय एव	को मानते हैं और यस्य जिसका आश्रय ही
मोक्षोऽस्ति। यस्याच्छाया-	मोक्ष है और अनाश्रय अकृपा
कृपानाश्रयो मृत्युर्जन्ममरण-	मृत्यु जन्म मरण का कारण है
कारकोऽस्ति तस्मै-कस्मै	तस्मै, उस प्रजापति के अर्थ
प्रजापतये प्रजापतिर्वै कः	प्रजापति नाम कः का है। और
तस्मै हविषा विधेमेति	कः नाम प्रजापति प्रजा के स्वामी का है।

शतपथ काण्ड ७ अ० ३	यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है
सुखस्वरूपाय ब्रह्मणे	उस सुख स्वरूप के लिए जो कि ब्रह्म है।
देवाय प्रेम भक्ति रूपेण	देव है उस देवाय दिव्य परमेश्वर के अर्थ
वयं हविषा विधेम सततं तस्यैवो-पासनं कुर्वीमहि-	प्रेम भक्ति रूप हवि का हम विधेम विधान करते हैं तथा उसकी उपासना करें।

इस मन्त्र में ईश्वर की उपासना से लाभ एवं उपासना न करने से हानि का वर्णन है। अर्थात् जो जन जगदीश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करेगा उसके आत्मा में ज्ञान एवं वल प्रदान करेगा और ज्ञान प्राप्त कर उपासक जीवन मुक्त तथा नित्य मुक्ति प्राप्त करेगा तथा जो जीव जगदीश्वर की स्तुति आदि नहीं करेगा वह जन्म जरा की जटिल जंजीरों में जकड़ा रहेगा।

अर्थात् नानाविध योनियों में चक्कर लगाता रहेगा और परमेश्वर की उपासना विश्व के सर्व विद्वान् करते रहे हैं यह संसार एक नदी है, अश्मन्वतीरीयते संरभध्वं—यह जगत् एक नदी है इससे पार हो जाना सज्जन जनों का संग करके तथा जो अशिवा अकल्याणकर प्राणी हैं उनका संग त्याग दे, उनके साथ रहने से संसार सागर में गोते लगायेगा। अवके न जाने कितने जन्म जन्मान्तरों में यह मानव देह प्राप्त हुआ है आगे न जाने कहाँ-कहाँ जाना होगा। फिर समय मिलेगा अथवा नहीं क्योंकि 'अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वस्तिस्कृत' अर्थात् पत्ते के सदृश चंचल शरीर तेरी वस्ती है और अश्वत्थ—कल रहेगा वा नहीं ऐसा यह असार संसार है न जाने कब जगत् से जाना पड़ जाये फिर क्या वनेगा और मानव देह ही न मिले तव क्या होगा और मानव देह मिले किसी जंगली जीव में तव तू क्या कर सकेगा। आओ आवो विश्व विधाता की उपासना कर इस जीवन को सफल करें।

॥ अथप्रार्थना विषय: ॥

॥ स्तुति विषयश्चापि ॥

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

यजु० अ० ३६ मं० २२ ।

हे परमेश्वर यतो यतो देशात् त्वं	हे परमेश्वर यतः यतः जिस-जिस देश से आप
समीहसे—जगद् रचना पालनार्थां चेष्टां करोपि ततस्ततो देशान्नो	समीहसे जगत की रचना पालनार्थ चेष्टा करते हो ततः ततः उस-उस देश से
अस्मानभयं कुरु यतः सर्वथा सर्वेभ्यः देशेभ्यो भयरहिता भवत् कृपया वयं भवेम तथा तत्स्थाभ्यः	नः हमको अभयं कुरु अभय कर जिससे सर्वथा सर्वदेशों से अभयं कुरु निर्भय करो जिससे हम निर्भय हों तथा वहाँ की
प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मानभयं कुरु एवं सर्वेभ्यो देशेभ्यः तत्रस्थाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मान् शं कुरु धर्मार्थकाममोक्षादि सुख-	प्रजा से तथा पशुओं से नः हमको अभय करो तथा इसी प्रकार सर्व देशों तथा वहाँ की प्रजा से तथा पशुओं से नः हमको शं-सुखद करो तथा धर्म अर्थ काम तथा मोक्षादि सुखयुक्त
युक्तान् स्वानुग्रहेण सद्यः संपादय	करो तथा अपनी कृपा से शीघ्र संपादन करो ।

॥ सर्वशान्ति की स्तुति प्रार्थना ॥

निम्न मंत्र में—

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्ति सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि । यजु० अ०३६ मं० १७ ॥

भाष्यं—द्यौः शान्तिः हे सर्वशक्तिमन्	हे सर्वशक्तिमान्
परमेश्वर त्वद्भक्तया त्वत्	परमेश्वर आप की भक्ति से और
कृपया च द्यौःअन्तरिक्षं	आपकी कृपा से द्यौ अन्तरिक्ष
पृथिवी जलमोषधयो	एवं पृथिवी तथा जल औषधि
विश्वेदेवाः सर्वेविद्वांसो	सर्वविद्वान्—विश्व देव और
ब्रह्म वेदः सर्वजगच्चास्मदर्थं	ब्रह्म वेद तथा सारा जगत् हमारे
शान्तं निरुपद्रवं सुख-	लिये शांत निरुपद्रव तथा सुख
कारकं सर्वदास्तु अनुकूलं	कारक सदा अनुकूल रहे ।
भवतु नः । येन वयं वेद भाष्यं	जिससे हम वेद
सुखेन विदधीमहि	भाष्य को सुख से रच सकें, बनायें
हे भवगवन् एतया सर्वशान्त्या	हे भगवन् इस सर्वशान्ति से विद्या
विद्या बुद्धिविज्ञानारोग्य सर्वोत्तम	बुद्धि विज्ञान आरोग्य एवं सर्वोत्तम
सहायै भवान् मां सर्वथा वर्धयतु	सहाय से आप मुझ को सर्वथा बढ़ायें
तथा सर्वजगच्च	तथा सर्व विश्व को भी बढ़ायें
धेहि एवं कृपयैतदादि	इस प्रकार कृपा कर के इत्यादि
शुभान् गुणान् मह्यं देहीत्यर्थः	शुभ गुणों को मुझे प्रदान करो—

अर्थात् आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के दु.खों से मुक्त कर शारीरिक, वाचिक, मानसिक एवं आत्मिक सुख सम्पन्न करो ।

।। स्तुति एवं प्रार्थना विषयः ।।

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्य्यमसि वीर्य्यंमयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि ओजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्यु' मयि धेहि सहोसि सहो मयि धेहि । य० अ० १९ मं० ९ ।

हे परमेश्वर त्वं तेजोऽसि अनन्तविद्यादि गुणैः प्रकाशमयोऽसि मय्यप्यसंख्यातं तेज विज्ञानं धेहि	हे परमेश्वर त्वं आप तेजोऽसि तेजस्वी अनन्त विद्यादि गुणों से प्रकाशित हो मयि-मुझ में भी असंख्य तेजविज्ञान धारण कर
हे परमेश्वर त्वं वीर्य्यमस्यनन्त पराक्रमवानसि कृपया मय्यपि शरीर बुद्धि शौर्य्यं स्फूर्त्यादि वीर्यं पराक्रमं स्थिरं धारय	हे परमेश्वर आप वीर्य-अनन्तपरा क्रम वान हो मयि-मुझ में भी कृपा करके वीर्यं पराक्रम बुद्धि शौर्य्य स्फूर्ति आदि वीर्य पराक्रम को स्थिर करो धारण करा
हे महाबलेश्वर त्वमनन्त बलमसि मय्यप्य नुग्रहतः उत्तमं बलं धेहि स्थापय	हे महाबलेश्वर त्वं आप अनन्त बल हो मुझें भी अनुग्रह करके उत्तम बल धारण करा
हे परमेश्वर त्वमोजोऽसि मय्यप्योजः सत्यं विद्या बलं धेहि	हे परमेश्वर त्वं आप ओजोऽसि ओजस्वी हो मुझ में भी सत्य विद्या बल दो
हे परमेश्वर त्वं मन्युरसि दुष्टान् प्रति क्रोधकृदसि मय्यपि स्वसत्तया दुष्टान् प्रति मन्यु' धेहि	हे परमेश्वर आप मन्युः दुष्टों पर क्रोध करते हो मुझे भी दुष्टों पर क्रोध मन्यु प्रदान करो

हे सहनशीलेश्वर त्वं सहोऽसि	हे सहनशील ईश्वर त्वं आप सहन-शील हो
मय्यपि सुख दुःख युद्धादि सहनं	कृपया मुझे भी सुख दुःख युद्धादि
देहि एवं कृपयैतदादि शुभान् गुणान् मह्यं देहि	सहनशील करो तथा ये शुभगुण प्रदान करो ।

प्रार्थना याचना समर्पण विषयः

।। स्तुति प्रार्थना याचनोपासना समर्पण विषय के मंत्र ।।

ओ३म् मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्यानः सन्त्वाशिषः । य० अ० २ मं० १० ।

हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् परमात्मन्	हे इन्द्र परमैश्वर्यवान् परमात्मन् आप
मयि मदात्मनि श्रोत्रादिकं मनश्च	मेरे आत्मा मे श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा मन
सर्वोत्तम भवान् दधातु तथा स्मांश्च	सर्वोत्तम स्थापित करो तथा हम को
पोषयतु अर्थात् सर्वोत्तमैः पदार्थैः	परिपुष्ट करो और सर्वोत्तम पदार्थों के
सह वर्तमानानस्मान् सदा कृपया	साथ वर्त्तमान हम को सदा करो और
करोतु पालयतु च अस्मान् तथा	हमारा पालन करो तथा हम को
नोऽस्मभ्यं-मघं परमं विज्ञानादि	मघं-धन-परम विज्ञानादि धन
धनं विद्यते यस्मिन् स मघवा	है जिस में, वह मघवा
भवान् स परमोत्तमं राज्यादि धन-	आप परमोत्तम राज्यादि धन
मस्मदर्थं दधातु सचतां तत्र चास्मान्	हमारे लिये प्रदान करो तथा मिले
संवेतान् करोतु तथा भवन्त उत्तमेषु	हुये हमको संयुक्त करो । मनुष्यो
गुणेषु सचन्त । अस्माकं हे भगवन्	तुम मिलकर चलो । हे भगवन्
त्वत् कृपयास्माकं सर्वा आशिषः	आपकी कृपा से हमारी सर्व इच्छा

इच्छा सर्वदा सत्या भवन्तु मा कश्चिद स्माकं चक्रवर्त्ति राज्यानुशासनादय आशिष इच्छामोघा भवेयुः	सदा सत्य हों। कोई हमारी चक्रवर्त्ति राज्यादि की इच्छा निष्फल न हो।

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तयामामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा। यजु० अ० ३२ मं० १४

भाष्यं—हे अग्ने परमेश्वर परमोत्तमया धारणावत्या धिया बुद्ध्या सह मां-मां मेधाविनं सर्वदा कुरु	हे अग्ने परमेश्वर परम उत्तम धारणा वाली धी मेधा बुद्धि के साथ मां-मुझ को मेधावी सर्वदा करो
का मेधेत्युच्यते—देवगणा विद्वत्समूहाः पितरो ज्ञानिन	का मेधा-इस प्रश्न का उत्तर कि देवगण विद्वानों के समुदाय तथा पितरः ज्ञानी जन
त्वयामुपासते—तया-तया मेधया अद्य—वर्त्तमान दिने मां सर्वदा युक्तं कुरु संपादय	यां जिसकी उपासना करते हैं तया उस मेधा से मुझे सर्वदा सर्वथा आज मेधावी करो-मेधा संयुक्त करो
स्वाहा—अत्र स्वाहा शब्दार्थे प्रमाणं निरुक्तकारा आहुः—	यहां स्वाहा शब्द के अर्थ में प्रमाण निरुक्तकार- अ. ८ खण्ड २ में देते हैं।
सु आहेति वा-सुष्ठुरीत्या सु-सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याण- करं प्रियं वचनं सर्वै मनुष्यै सदाः वक्तव्यं	सु-सुन्दरता से-सत्यहित मधुर अर्थात् कोमल मधुर कल्याणकारी प्रिय वचन सब मनुष्यों को सदा बोलना चाहिए।
वा वागाहेति वा-या ज्ञानमध्ये स्वकीया वाग् वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यं- स्वं प्राहेति वा-स्वं स्वकीयं	जो वाणी अपने ज्ञान में हो सत्यासत्य वह जो कहे वही कथन करना चाहिये भीतर और बाहर और कथन न करे अपने धन को ही सदा अपना माने

पदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यं न	अन्य के पदार्थ को अपना कदापि
परपदार्थं प्रति चेति	न कहे अन्य के धन को अपना कहना
स्वाहुतं हवि जुहोतीति	पाप है
वा सु-सुष्ठु रीत्या संस्कृत्य-संस्कृत्य	सुन्दरता अच्छे प्रकार शुद्ध कर करके
हविः सदा होतव्यमिति	हविः को—घृत सामग्री को हवन करना चाहिए
स्वाहा शब्दस्य चत्वारार्थाः	ये स्वाहा शब्द के ४ अर्थ हैं

सर्व समर्पण विषयमन्त्र संक्षेपतः

ओ३म् आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वागयज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथंतरं च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ।

भाष्यं—आयुर्यज्ञेन यज्ञ वै विष्णुः १/१/२/१३	यज्ञ नाम विष्णु
वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगत्	का है। जो सारे विश्व में व्यापक
स विष्णुरीश्वरः हे मनुष्याः	है इससे ईश्वर का नाम विष्णु है।
तेनेश्वर प्राप्त्यर्थं	उस ईश्वर की प्राप्ति
सर्वं स्वकीयमायुः कल्पतामिति	के अर्थ अपना
यदस्मदीयमायुरस्ति तदीश्वरेण	सर्व आयु समर्पित करें
कल्पतां परमेश्वराय समर्पितम्	हमारा जो आयु है वह सब
भवतु। एवमेव प्राणः चक्षुः	परमेश्वर को समर्पित हो —
श्रोत्रं वाक् वाणी मनः मननं	श्रोत्र वाक् वाणी मनन
ज्ञानं आत्मा जीवः ब्रह्मा	ज्ञान आत्मा जीव ये सब

चतुर्वेद ज्ञाता यज्ञानु-
ष्ठानकर्त्ता ज्योतिः सूर्यादि
प्रकाशः । धर्मः न्यायः । स्वः
सुखं । पृष्ठं भूम्याद्यधि
करणं । यज्ञः अश्वमेधादिः
शिल्पक्रियामयो वा स्तोमः
स्तुति समूहः । यजुः-यजु-
र्वेदाध्ययनं । ऋक्-ऋग्वेदा-
ध्ययनं । सामः-सामवेदाध्ययनं
चकारादथर्ववेदाध्ययनं च
वृहच्च रथंतरं च महत् क्रिया सिद्धि
फलभोगः
शिल्प विद्याजन्यं वस्तु चास्म-
दीयमेतत् सर्वं परमेश्वराय
समर्पितमस्तु येन वयं कृतज्ञाः
स्याम । एवं कृते परम कारु-
णिकः परमेश्वरः सर्वोत्तमं
सुखमस्मभ्यं दद्यात्
येन वयं (स्वर्देवा) सुखे प्रकाशिता
अमृताः परमानन्द मोक्षं
अगन्म-सर्वथा प्राप्ता भवेम
तथा (प्रजापतेः) वयं परमेश्व-
रस्यैव प्रजाः (अभूमः) अर्थात्
परमेश्वरं विहायान्य मनुष्यं
राजानं नैव कदाचिन्मन्यामहे
इति । एवं जाते (वेट् स्वाहा)
सदा वयं सत्यं वदामः । भवदाज्ञा-

ब्रह्मा चार वेद का ज्ञाता
यज्ञ कर्त्ता ज्योति सूर्यादि
प्रकाश । धर्मं न्याय । स्व
सुख । पृष्ठ भूमि आदि आधार
यज्ञ अश्वमेधादि शिल्प
क्रियामय वा स्तोम नाम
स्तुतियों का समूह यजु-यजुर्वेद
का अध्ययन ऋक् ऋग्वेद
अध्ययन सामवेद
तथा अथर्ववेदाध्ययन
वृहत् और रथन्तर नाम
क्रिया की सिद्धि फलभोग
एवं शिल्प विद्याजन्य वस्तु
सर्व परमेश्वर के अर्थ समर्पित हो ।
जिससे हम कृतज्ञ हों
ऐसा करने पर परम कारुणिक
परमेश्वर हमारे लिये सर्वोत्तम
सुख प्रदान करे
जिससे हम सुखमय
अमृत परमानन्द मोक्ष पद को
सर्वथा प्राप्त हों
और प्रजापतेः हम परमेश्वर
की ही प्रजा अभूमः हों
अर्थात् परमेश्वर को त्यागकर
अन्य मनुष्य को राजा कदाचित्
भी हम न माने । इस प्रकार
होने पर स्वाहा हम सदा सत्य बोलें

करणे परं प्रयत्नतः उत्साह- वन्तोऽभूम भवेम मा कदा- चिद् भवदाज्ञा विरोधिनो वयमभूम किन्तु भवद्सेवायां सदैव पुत्रवद् वर्त्तेमहि ।	आपके आज्ञा करने पर अति प्रयत्न से उत्साह वाले हों आपकी आज्ञा के विरोध में न होवें किन्तु आपकी आज्ञा में हम सदा पुत्र तुल्य वर्त्तें इति ।

अथ समर्पण विषयः संक्षेपतः

एवमेव वाजश्च मे इत्यष्टादशाध्यायस्थैः मंत्रैः सर्वस्व समर्पणं परमेश्वराय कर्त्तव्य- मिति वेदे विहितम् अतः परमोत्तम पदार्थं मोक्षमारभ्यान्नपानादि पर्यन्तमीश्वराद् याचितव्यमिति	इसी प्रकार वाजश्च मे इत्यादि यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के मंत्रों में सर्वस्व समर्पण का विधान है । अतः परमेश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करना चाहिये । अतः परमोत्तम पदार्थ मोक्ष से लेकर अन्न पानादि सर्व परमेश्वर से ही याचना करें ।

इसी कारण प्रतिदिन सायं प्रातः दो समय प्रत्येक वैदिकधर्मी परमेश्वर को सन्ध्या के समय

समर्पण—

हे ! ईश्वर दयानिधे !

भवद् कृपया अनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काम मोक्षाणां स[illegible] सिद्धि भवेन्नः कह कर सर्व कर्मों का समर्पण करता है और योगशास्त्र में [illegible] समर्पण का विधान है ।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ईश्वर को समर्पण करने से भी शीघ्र समाधि ला[illegible] और समाधि का फल होता है । इस कारण उपासक अपने को सदा ईश्व[illegible]

अर्पण करदे अर्थात् आत्मा की आवाज पर चले।

निम्न मन्त्र में प्रथम मन एवं बुद्धि को संयुक्त करे उस उपासक को विप्र वर्णन किया और ब्रह्म को भी महान् विप्र कहा है। विप्र नाम विद्वान् का है अतः परमेश्वर महान् विद्वान् है इसीलिए उसे इस मन्त्र में वयुनाविद् अर्थात् सर्वज्ञ कथन किया है। उसकी विशेष रूप से स्तुति करे किन्तु स्तुति में बनावट न हो वह सत्य हो।

अथोपासना विषयः अर्थात् उपासना विधि

अथोपासना विषयः संक्षेपतः — अब उपासना विषय संक्षेप से लिखते हैं।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राविप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
निहोत्रादधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥

। य० अ० ११।

अत्र जीवेन सदा परमेश्वरस्यैवोपासना कर्त्तव्येति विधियते।	यहाँ जीव को सदा परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए यह विधान करते हैं।
विप्राः ईश्वरोपासका मेधाविनः	विप्राः ईश्वर के उपासक मेधावी
होत्राः योगिनो मनुष्याः	होत्राः योगाभ्यासी जन
विप्रस्य-सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य मध्ये (मनः युञ्जते) युक्तं कुर्वन्ति। उत-अपि धियः	विप्रस्य-सर्वज्ञ परमेश्वर के मध्ये मध्य में मनः मन इच्छा शक्ति को युञ्जते संयुक्त करते हैं उत और धियः
बुद्धिवृत्तीस्तस्य तस्मैव मध्ये युञ्जते	बुद्धि की वृत्ति-स्मृति को भी उसके ही मध्य में युञ्जते—संयुक्त करते हैं
कथं भूतः सः परमेश्वरः सर्वमिदं	कैसा है वह परमेश्वर कि जो इस सर्वं

जगत् यः विदधे तथा	जगत् को विदधे-धारण तथा पोषण
वयुनाविद् सर्वेषां जीवानां	करता है वह वयुनाविद् जो सर्व जीवों के
शुभाशुभानि यानि प्रज्ञानानि	शुभ और अशुभ जितने प्रज्ञान कर्म एवं
प्रजाश्च तानि यो वेद स वयुनाविद्	प्रजापुत्रादि हैं उनको जो जानता है वह वयुनाविद् है
एकः स एकोऽद्वितीयोऽस्ति एकः	एक उसके तुल्य दूसरा नहीं है तथा
इत् सर्वत्र व्याप्तो ज्ञानस्वरूपश्च	इत् ज्ञानस्वरूप एवं सर्वत्र व्याप्त है
नास्माद् पर उत्तमः कश्चिद्	इससे उत्तम श्रेष्ठ कोई भी
पदार्थो वर्त्तते	पदार्थ नहीं है
इति तस्य देवस्य	ऐसे उस देवस्य-दिव्य
सर्वं जगत् प्रकाशकस्य	सर्व जगत् के प्रकाशक देव एवं
सवितुः सर्वंजगदुत्पादकस्ये-	सवितुः सर्व जगत् के उत्पादक
श्वरस्य सर्वैः मनुष्यैः	ईश्वर की सर्व मनुष्यों को
परिष्टुतिः परितः सर्वतः स्तुतिः	परिष्टुतिः सर्व प्रकार स्तुति
कार्या । कथं भूता स्तुति	करनी चाहिए । कैसी वह स्तुति—उत्तर—
महीत्यर्थः । एव कृते सति	मही महती सर्वश्रेष्ठ । इस प्रकार करने पर
जीवाः परमेश्वरमुपगच्छन्तीति	सर्व जीव परमेश्वर को प्राप्त होते हैं।

योग और योगी का लक्षण

युञ्जानः प्रथमं मनः तत्वाय सविता धियं ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय पृथिव्य अध्याभरत् ।।

युञ्जानः योगं कुर्वाणः सन्	जो युञ्जानः योगकर्ता तत्वाय ब्रह्मादि
तत्वाय ब्रह्मादि तत्व ज्ञानाय	तत्व ज्ञान के लिए

प्रथमं मनो युञ्जानः सन्	प्रथम मन को संयुक्त करता है
योऽस्ति तस्य धियं सविता	वह जो है उसकी धियं - बुद्धि को सविता
परमेश्वरः कृपया स्वस्मिन्नुपयुंक्ते	परमेश्वर कृपा कर अपने स्वरूप में संयुक्त करता है।
यतोऽग्नेरीश्वरस्य ज्योतिः प्रकाश स्वरूपं	जिससे वह अग्नेः ईश्वर की ज्योति प्रकाश को
निचाय्य यथावद् निश्चित्य अध्या-भरत्	निचाय्य-यथावद् निश्चय करके अध्या-भरत् धारण करता है
स योगी परमात्मानं स्वात्मनि धारितवान्	वह योगी अपने में परमात्मा को धारण करता है।
भवेत् । इदमेव पृथिव्या मध्ये योगिन उपासकस्य लक्षणं वेदितव्यम् ।	पृथिवि पर यही योगी का अर्थात् योग और योगी का लक्षण जानना चाहिए।

इसनें योग और योगी का लक्षण है। योगाभ्यास में सर्वप्रथम मन को संयुक्त करे तथा मन नाम, इच्छा शक्ति का है जैसे भूखे व्यक्ति को भोजन के विना कुछ भी नहीं भाता एवं परमेश्वर प्राप्ति की अभिलाषा होनी चाहिये तथा तत्व ज्ञान के लिए बुद्धि ही एक साधन है जिससे ब्रह्मादि तत्व का निश्चय होता है। इस मंत्र में योगी को सविता ब्रह्म ज्ञान का प्रसवन कर्त्ता वर्णन किया है जिसमें ब्रह्म ज्ञान होता है वही योग है। अग्नि नाम ब्रह्म का है क्योंकि 'अग्नि अग्रणी भवति' यह निरुक्त का वचन है। ब्रह्म सर्व अग्रणी है उसी की ज्योति ज्ञान ज्योति प्रकाश है सर्वत्र उसी का प्रकाश है जो उस ज्ञान ज्योति को आत्मा में धारण करता है वही योगी है। यथा वेन-स्तत् पश्यन् निहितं गुहा यजु० अ० ३२ मं० ७ तथा 'विद्वान् गन्धर्वो धाम-विभृतं गुहासत. यजु० ३२ मं० ९ इन दो मंत्रों में यह वर्णन किया है क्योंकि विद्वान् ब्रह्म को बुद्धि से देखता है और विद्वान् ही ब्रह्म का कथन कर सकता है।

प्रश्न—श्री स्वामी जी महाराज मन को जड़ मानते हैं पढ़ो सत्यार्थ प्रकाश—देह और अन्तःकरण जड़ हैं। उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं हैं। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है उसी को शीतोष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं न उनको भूख न पिपासा किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष शोक दुःख-सुख का भोग जीव करता है। जैसे वहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे-बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त अहंकार से संकल्प विकल्प निश्चय स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान्य का भागी होता है। इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी महाराज मन बुद्धि आदि को जड़ मानते हैं।

उत्तर—श्रीमान् जी यह उत्तर नवीन [वेदान्तियों की ही दृष्टि से है। क्योंकि वे देह और अन्तःकरण को जड़ मानते हैं—पढ़ो इसके ऊपर का प्रकरण।

प्रश्न—न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमार्थता। माण्डूक्योपनिषद।

अर्थ—जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव का न कभी निरोध अर्थात् न कभी आवरण में आया न जन्म लेता न वद्ध है और न साधक अर्थात् न कुछ साधना करने हारा है न छूटने की इच्छा करता है और न इसको कभी मुक्ति है क्योंकि जव परमार्थ से बन्ध ही नहीं है तो मुक्ति क्या।

उत्तर—यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता। शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता। पाप रूप कर्मों के फल भोग रूप वन्ध में फंसता। उसके छुड़ाने को साधन करता। दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःखों से छूटकर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

प्रश्न—ये धर्म देह और अन्तःकरण के हैं जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं।

आत्मा निर्लेप है।

कृपया इस प्रकरण पर भी दृष्टिपात कीजिये। नवीन वेदान्ती का कथन है—

जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं, वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में अन्तःकरण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसे अग्नि से लोहा (उष्ण) वैसे चेतन हो रहे हैं इत्यादि से स्पष्ट है कि मन बुद्धि आदि को स्वामी जी स्वयं जड़ नहीं मानते किन्तु नवीन वेदान्तियों को उनके दृष्टिकोण से ही उत्तर है। अन्यथा स्वामी जी यह क्यों लिखते।

प्रश्न—मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है वा नहीं।

उत्तर—नहीं रहता।

प्रश्न—फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है ?

उत्तर—उसके सत्यसंकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक शरीर संग नहीं रहता—अर्थात् मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं।

शृण्वन् श्रोत्रं भवति	जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र
स्पर्शयन् त्वग्भवति	जब स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा
पश्यन् चक्षुर्भवति	देखने के संकल्प से चक्षु
रसयन् रसना भवति	स्वाद के अर्थ रसना
जिघ्रन् घ्राणं भवति	गन्ध के लिए घ्राण
मन्वानो मनो भवति	संकल्प विकल्प करते समय मन
बोधयन् बुद्धिर्भवति	निश्चय करने के लिए बुद्धि
चेतयंश्चित्तं भवति	स्मरण करने के लिए चित्त
अहंकुर्वाणोऽहंकारो भवति	और अहंकार करने के लिए
शत० का० १४	अहंकार रूप अपनी स्वशक्ति
सत्यार्थ प्रकाश समु० ९।	से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और
	संकल्पमात्र शरीर होता है।

इस शतपथ के वचन में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का मोक्ष में सद्भाव माना है।

देखो वेदान्त शारीरिक सूत्रों में मन को मोक्ष में भी माना है।

अभावं वादरिराह ह्येवम्। वेदान्त दर्शन अ० ४ पा० ४ सू० १०।

अर्थ—जो वादरि व्यास जी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पाराशर जी नहीं मानते।

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्। वेदान्त० अ० ४ पा० ४ सू० ११।

अर्थ—जैमिनि आचार्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर और इन्द्रिय प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं।

छाशाहवदुभयं वादरायणोऽतः वे० ४।४।१२।

अर्थ—व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानता है। अर्थात् शुद्ध सामर्थ्य युक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादि का अभाव मानते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमांगतिम्। कठोपनिषद् ।२।३।१०।

अर्थ—जब शुद्ध मन युक्त ५ ज्ञानेन्द्रियां जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परम गति मोक्ष कहते हैं। इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जिनमें मन को जीव के साथ सदा—मुक्ति में भी रहता है यह स्वीकार किया है मुक्ति में जड़ का योग नहीं रहता। यदि मन जड़ होता तो वह जीव के साथ मुक्ति में कैसे रहेगा।

'इति शम् शेष पुनः—स्वा० रामेश्वरानन्द गुरुकुल घरौंडा करनाल।

प्रश्न—उसकी शक्ति कितने प्रकार की और कितनी होती है?

उत्तर—मुख्य एक प्रकार की शक्ति है। परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वाद और

गन्ध ग्रहण तथा ज्ञान इन २४ चौंवीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव हैं। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। स. प्र. समु. ६। इत्यादि प्रमाणों की विद्यमानता में कौन आर्य एकांगी मन को जड़ कह सकता है। वस्तुत: नवीन वेदान्ती मन को भौतिक मानते हैं और आत्मा को अकर्त्ता अभोक्ता मानते हैं। पढ़ो—सत्यार्थ प्रकाश समु. ६। नवीन वेदान्ती उत्तर देता है। जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्त:करण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा अग्नि से लोह उष्ण होता है वैसे चेतन हो रहे हैं। सत्या. समु. ६। इसके आधार पर महाराज ने कह दिया कि मन तो जड़ है उसे सुख दु:ख कहाँ? स्वयं स्वामी जी तो मन बुद्धि एवं चक्षुरादि इन्द्रियों को जीव की शक्ति मानते हैं। पढ़ो सत्यार्थ प्रकाश समु. ६।

॥ आत्मा का लक्षण ॥

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख-दु:ख ज्ञानान्यात्मनो लिंगम्। न्या. १/१/१०। प्राणापान निमेषोन्मेष जीवन मनोगती इन्द्रियान्तर विकारा सुख दु:खेच्छाद्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि। वैशेषिक। ३/२/४।

अर्थ— इच्छा-पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा। द्वेष—दुखादि अनिच्छा प्रयत्न—पुरुषार्थ। बल सुख—आनन्द। दु:ख—विलाप अप्रसन्नता। ज्ञान—विवेक पहिचाना ये तुल्य हैं।

परन्तु वैशेषिक में प्राण—प्राण वायु को बाहर निकालना अपान=प्राण को बाहर से भीतर को लेना निमेष-आंख को मीचना। उन्मेष-आंख को खोलना मन—निश्चय स्मरण और अहंकार करना, गति—चलना इन्द्रिय सब इन्द्रियों को चलाना अन्तर विकार—भिन्न-भिन्न क्षुधा तृषा हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्थूल नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७।

जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों और न होने से न हों वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

॥ कृपया आगे भी पढ़िए ॥

पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सतरह तत्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म. मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं—एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है, दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप है। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख भोग करता है। सत्यार्थ. समु. ९।

इससे भी आपकी दिव्य की आँखें खुल जानी चाहिये कि मन, बुद्धि आदि जीवात्मा की स्वशक्ति हैं इसी से ये मुक्ति में भी जीव के साथ रहती हैं किन्तु भौतिक शरीर संग नहीं रहता।

(२) प्राणमय—जिसमें प्राण जो भीतर से बाहर आता है।

अपान—जो बाहर से भीतर आता है।

समान—जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता है।

उदान—जिससे कण्ठस्थ अन्न पान खींचा जाता और बल पराक्रम होता है।

व्यान—जिससे सब शरीर में चेष्टादि कर्म जीव करता है।

(३) मनोमय—जिससे मन के साथ अहंकार वाक् पाणी पाद पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियां हैं।

(४) विज्ञानमय—जिसमें बुद्धि चित्त श्रोत्र त्वचा नेत्र जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है।

(५) आनन्दमय कोश—जिसमें प्रीति प्रसन्नता न्यूनानन्द अधिक आनन्द और आधार रूप प्रकृति है। ये ५ कोश कहाते हैं। सर्व कर्म उपासना और ज्ञानादि व्यवहार जीव इन्हीं से करता है।

तीन अवस्था—(१) जागृत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति, ये तीन जीव की अवस्था हैं।

तीन शरीर—(१) स्थूल जो यह दीखता है, (२) सूक्ष्म ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ सूक्ष्म भूत, मन तथा बुद्धि इन सतरह तत्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है।

यह सूक्ष्म शरीर जन्म-मरणादि में भी जीव के साथ रहता है।

॥ सूक्ष्म शरीर के दो भेद ॥

(१) एक भौतिक—जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है।

(२) दूसरा स्वाभाविक—जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं यह अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है।

(३) कारण शरीर है जिसमें गाढ़-निद्रा-सुषुप्ति होती है वह प्रकृतिमय होने से सब जीवों के लिए एक है।

(४) तुरीय शरीर वह कहाता है जिससे समाधि में परमात्मा के आनंद स्वरूप में मग्न जीव होते है। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है।

इसी प्रकार स्वामी जी ने अपने वेद भाष्यों में मन बुद्धि आदि शब्दों का कहीं भी जड़ अर्थ नहीं किया क्योंकि महावैय्याकरण महर्षि ज्ञानार्थक मन आदि का जड़ अर्थ कैसे कर सकते थे। मन-ज्ञान से मन, बुध-अवगमन से बुद्धि, चिति संज्ञाने से चित्त, अहंपूर्वक कृञ से अहंकार शब्द सिद्ध होते हैं।

तथापि मन बुद्धि आदि को जड़ मानने वालों को मन बुद्धि आदि शरीर के प्रदेश मानने पड़ेंगे। जोकि अनित्य तथा शरीर के साथ विनाशी होंगे उनका देहान्तर एवं मोक्ष में जाना असम्भव है यदि जड़ मन आदि मोक्ष में जीवात्मा के साथ रहेंगे तो मोक्ष कैसा ? मोक्ष में जीव को ब्रह्म संग होता है जड़ का संग नहीं रहता।

प्रश्न—क्या मन जड़ है ?

उत्तर—नहीं वह तो जीवात्मा की शक्ति है। पढ़ो यजुर्वेद ऋषि भाष्य।

मनोरश्वासि. य. अ. ३७ मं. १२।	मनः—अन्तःकरण की अश्वा-व्यापक है
मनो यजु प्रपद्ये. अ. २६ मं. १।	मनः—मननात्मक चित्त
मनसोः य. अ: ३६ मं. २।	मनसः—अन्तःकरण की व्याकुलता
युञ्जते मनः य. अ. ३७ मं. २।	मनः—संकल्प विकल्पात्मक
मनोः जूतिः य. अ. २ मं. १३।	मनः—मन संकल्प विकल्पात्मक है
मनोन्वा—य. अ. ३ मं. ५३।	मनः—मननशील संकल्प विकल्पात्मक है।
आ न एतु मनः य. अ. ३ मं. ५४	मनः—स्मरणात्मक चित्त
पुनर्नः पितरो मनः ३-५२	मनः—धारणावती बुद्धि को
सोम व्रते तव मनः ३-५६	मनः—सोम तेरे व्रतमें अन्तःकरण की वृत्ति को
पुन मनः य. अ. ४ मं. १५	मनः—विज्ञान के साधक मन को
युन्जते मनः य. अ. ५ मं. १४	मनः—चित्त को संयुक्त करता है
मनस्ते आप्यायतां. य. अ. ६ मं १५	मनः—संकल्प विकल्पात्मक मन
मनो मनसा. य. अ. ६ मं. १८	मनः—अन्तःकरण को मनसा-विज्ञान से
मनो मे हार्दि य. अ. ६ मं. २१	मनः—चित्त के हार्दि-अतिप्रिय विषय को
मनो मे तर्पयत: य. अ. ६ मं. ३१	मनः—अन्तःकरण को मे—मेरे-तर्पयत तृप्त करो
मनस्त्वाष्टुः य. अ. ७ मं. ३	मनः—शुद्ध विज्ञान को

मनस्त्वाष्टु य. अ. ७ मं. ६	मनः—योगाभ्यास का चिन्तन-मनन का
मनो न येषु य. अ. ७ मं. ३७	मनः—विज्ञान को
युक्तेन मनसा य. अ. ११ मं. २	
मनः य. अ. ८ मं. ३३	मनः—अन्तःकरण को
वा तो वा मनो वा य. अ. ९ मं. ७	मनः—स्वात्मा अपने आत्मा को
युन्जते मनः य. अ. ११ मं. ४	मनः—चित्त को संयुक्त करते हैं
युन्जातः प्रथमं मनः ११-१	मनः—मननात्मक अन्तःकरण की वृत्ति को
मनो मेधां य. अ. ११-६६	मनः—इच्छा के साधन मेधा बुद्धि प्रज्ञा को
आ ते वत्सो मनः १२ -११५	मनः—चित्त को
मनो वैश्वकर्मणः य. अ. १३ मं. ५५	मनः—मननशील प्रेरक कर्म को
मनश्छन्दः य. अ. १५ मं. ४	मनः—संकल्पविकल्प शुद्ध
भद्रं मनः य. अ. १५-३९	मनः—मनन आत्मक मननशील
मनः १८-२	मनः—संकल्पात्मक विकल्पात्मक वृत्ति
चित्तम् १८-२	चित्तं—स्मृति स्मरण शक्ति
मनो गन्धर्वः य. १८-३,४३	मनः—ज्ञान साधक अन्तःकरण को
मनो यज्ञेन य. १८-२९	मनः—अन्तःकरण यज्ञ परमेश्वर वा विद्वानों के संग से
मनो मन्युः य. अ. ३-६	मनः—मननात्मक अन्तःकरण को
मनः प्रजापतये य. अ. २२ मं. २	मनः—मनन
चित्तं. य. अ. २२ मं.	चित्तं—स्मृति का साधक
मनो यज्ञेन कल्पतां य. १८ मं. २९	मनः—अन्तःकरण को

पढ़ो यजुर्वेद ऋषि भाष्य

अभ्यैक्षेतां मनसा य० अ० ३३ मं० ७।

अर्थ—अध्यापक उपदेशकजन ईश्वर को मन से देखें। तन्मे मनःशिव संकल्पमस्तु। य० अ० ३४ मं० १।

अर्थ—तद्—वह मेरा मन:—संकल्प विकल्प आत्मक—संकल्प शिव-कल्याणकारी धर्मविषयक-संकल्प—इच्छावाला अस्तु हो
तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु य० ३४ मं० २।

अर्थ—तत्—वह मे—मेरा मन मनन विचारात्मक मन शिवसंकल्पं धर्मप्रियं अस्तु हो।

तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु य० अ० ३४ मं० ३।

अर्थ—तत् वह मे—मेरा मन: योग गुप्त चित्त शिवसंकल्पम् शिव-नाम मोक्षविषयक चित्त मोक्ष की इच्छा वाला मन: अस्तु हो। तन्मे मन: शिव संकल्प मस्तु य० अ० ३४ मं० ४।

अर्थ—हे जगदीश्वर तत् वह मे मेरा जीव का मन: सर्व कर्मों का साधन शिवसंकल्पं-कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा वाला अस्तु हो। तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु य० ३४ मं० ५।

अर्थ—तत् वह मे मेरा मन: मन शिवसंकल्पं कल्याणकारी वेदादि के प्रचार की इच्छा वाला अस्तु हो।

तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु य० अ० ३४ मं० ६। मेरा मन मंगलमय नियमों का प्रिय हो।

इन शिवसंकल्प के छः मंत्रों में मन का स्वरूप पढ़ें

इनमें मन को नित्य संकल्प विकल्पात्मक माना है जो कि जीव की शक्ति ही है।

शिवसंकल्प ऋषि: मनो देवता। विराटत्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:—मनोवशीकरण विषयमाह—अब मन को वश करने का विधान करते हैं।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु। य० अ० ३४ मं०१।

पदार्थ—हे जगदीश्वर आपकी कृपा और विद्वानों के संग से यत् जो दैवं आत्मा में रहने हारा वा जीवात्मा का साधन दूरंगमं जो दूर-दूर जाता वा जीव को दूर-दूर गमन कराता वा अनेक पदार्थों का ग्रहणकर्त्ता तथा ज्योतिषां शब्दादि विषयों के प्रकाशक इन्द्रियों का ज्योतिः प्रवृत्त कराने हारा तथा एकं-असहाय अकेला है जो जाग्रतः जागते हुये जीव का दूर-दूर एति जाता है। तत् जो उ ही सुप्तस्य-सोते हुये का तथा उसी प्रकार एव ही एति भीतर अन्तःकरण में जाता है तत् वह मे मेरा मनः संकल्प विकल्पात्मक मन शिवसंकल्पम् कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला अस्तु हो।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का संग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं जो जाग्रतावस्था में विस्तृत व्यवहार करता वही सुषुप्ति दशा में शांत होता जो वेग वाले पदार्थों में अति वेगवान् ज्ञान का साधन और इन्द्रियों का प्रवर्त्तक है उस मन को वश करते हैं वे अशुभ कर्म से हटाकर शुभ कर्म में प्रवृत्त कर सकते हैं।

प्रश्न—इस मंत्र में मन को सदा-गति जागृत एवं सुषुप्ति दशा में भी गमन शील कथन किया है। इस देह में हृदय नाड़ी-रक्त एवं प्राण सदा गति करते हैं क्या ये सब मन हैं ? इसका उत्तर यह है कि नहीं, क्योंकि मन को मंत्र में गति के अतिरिक्त दूर-दूर जाने हारा अथवा प्राणी को दूर-दूर ले जाने हारा तथा अनेक पदार्थों का ग्रहणकर्त्ता कहा है। तथा मन को दैवं जीवात्मा में रहने हारा वा आत्मा का साधन भी माना है तथा अन्य में अन्य का गुण नहीं रह सकता क्योंकि क्रिया और क्रियागुण जिसमें संवाय सम्बन्ध से रहते हैं वह द्रव्य है अतः मन जीव का गुण है इसी से आत्मा में रहता है तथा जीव का साधन है जैसे प्रकाश और उष्णता अग्नि के गुण तथा अग्नि के साधन हैं एवं मन बुद्धि आदि जीव के गुण तथा जीव के साधन हैं तथा मन को इन्द्रियों का प्रेरक कहा है प्रेरणा जड़ नहीं दे सकता अतः मन आत्मा की विशेष शक्ति है इसी कारण महाराज ने मन को संकल्प शुभ इच्छा विकल्प अशुभ इच्छा स्वरूप माना है। इच्छा आत्मा का गुण है।

अतः एव महर्षि जी ने शिवः कल्याणकारी धर्म विषयः संकल्प इच्छा यस्य अर्थात् कल्याणकारक धर्म विषयक इच्छा वाला माना है। इच्छा आत्मा का गुण है पढ़ो न्याय, वैशेषिक, इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख इत्यादि आत्मगुण हैं।

शिवसंकल्प ऋषिः। मनोदेवता त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। य० ३४ मं०२।

पदार्थ—हे परमेश्वर आपके संग से येन जिस मनसा मन से अपसः सदा धर्म कर्मनिष्ठ मनीषिणः मन का दमन करने हारे धीराः ध्यान कर्त्ता बुद्धिमान जन यज्ञे अग्निहोत्र वा धर्मसंगत व्यवहार में वा योग यज्ञ में विदथेषु विज्ञान सम्बन्धी वा युद्धादि व्यवहार में कर्माणि इष्टकर्मों को कृण्वन्ति करते हैं तथा यत् जो अपूर्वं-सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला प्रजानां प्राणीमात्र के अन्तः मध्य हृदय में यक्षं पूज्य वा संगत एकीभूत हो रहा है। तत् वह मेरा मनः विचार करना रूप मन शिवसंकल्पं धर्मेष्टं धर्मप्रियं अस्तु हो।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त करके धर्माचरण में प्रवृत्त करें। इस मंत्र में मन को यक्ष-पूज्य एवं संगत एकीभूत माना है। यदि मन जड़ है तो पूज्य किसका तथा जड़ मन किस के साथ संगत एकीभूत हो रहा है तथा मन को अपूर्व सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला विशेषण भी विशेष चिन्तनीय है।

शिवसंकल्प ऋषिः। मनो देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु
। य० ।३४।

पदार्थ—हे जगदीश्वर वा परम योगिन् विद्वन् यत् जो प्रज्ञानं विशेष ज्ञान का साधु उत्पादक बुद्धि रूप उत और चेतः स्मृति साधन धृतिः धैर्य रूप चकार से लज्जादि का हेतु प्रजासु-मनुष्यों के अन्तः अन्तकर

में आत्मा का साथी होने से, अमृतं नाश रहित ज्योतिः प्रकाश रूप यस्मात् जिससे ऋते विना किञ्चन कुछ भी कर्म काम नहीं क्रियते किया जाता तत् वह मे मेरा मनः सर्व कर्म साधन मन शिवसंकल्पम् कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने हारा अस्तु हो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो जो अन्तःकरण बुद्धि चित्त और अहंकार रूप वृत्ति वाला होने से भीतर प्रकाश करने हारा प्राणियों के सर्व कर्मों का साधक अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्याचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्म से निवृत्त करो ।

शिवसंकल्प ऋषिः मनो देवता त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः
ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु । य. अ. ३४ मं० ४

पदार्थ—हे मनुष्यो येन जिस अमृतेन नाश रहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से भूतं उत्पन्न हुआ भुवनं वर्त्तमान काल सम्बन्धी और भविष्यत् भावी सर्वं सब इदं यह त्रिकालस्थ वस्तु मात्र परिगृहीतं सब ओर से परिगृहीत हो रहा है जाना जाता है येन जिससे सप्तहोता सात मनुष्य होता वा ५ प्राण छठा जीवात्मा सातवाँ अव्यक्त ये सात लेने देने वाले जिसमें हों वह यज्ञः अग्निहोत्रादि व विज्ञान रूप व्यवहार तायते विस्तृत किया जाता है तत् वह मे मेरा मनः योगयुक्त चित्त शिवसंकल्पम् मोक्षरूप संकल्प वाला अस्तु हो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो जो मन योग साधनोपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत भविष्य वर्तमान का ज्ञाता तथा सब सृष्टि का ज्ञाता कर्म उपासना ज्ञान का साधन है उस मन को सदा कल्याणप्रिय करो ।

इस मंत्र में मनः को योग के साधनोपसाधनों से सिद्ध भूत भविष्यत् वर्तमान काल का ज्ञाता परमात्मा के साथ रहने हारा अमृत अविनाशी एवं मोक्ष विषय की इच्छा वाला वर्णन किया है अतएव सिद्ध है कि यह मन जीवात्मा का साधन रूप विशिष्ट गुण है ।

शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्नमे मनः शिवसंकल्पमस्तु।
य० अ० ३४ मं०५

अर्थ—यस्मिन् जिस मन में रथनाभौ इव अराः जैसे रथ के पहियों के मध्य काष्ठ में अरा लगे रहते हैं एवं ऋचः ऋग्वेद साम-सामवेद यजूंषि यजुर्वेद प्रतिष्ठिता सब ओर से स्थित है (च) और यस्मिन् जिसमें अथर्व वेद स्थित है तथा यस्मिन् जिसमें प्रजानाम्-प्राणियों का सर्वं सब चित्तं सब पदार्थ सम्बधी ज्ञान ओतं सूत्र में मणियों के समान संयुक्त है तत् वह मे मेरा मनः मन शिवसंकल्पम् कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रचार वाला अस्तु हो।

हे मनुष्यो आपको चाहिये कि जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस मन में सब व्यवहारों का ज्ञान संचित होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचारण से पवित्र करो।

इस मंत्र में तो मन के जड़ होने की कल्पना पर सर्वथा कुठाराघात हो जाता है क्योंकि वेदादि ज्ञान का आधार तथा लौकिक ज्ञान का संचय मन में होता है अतः जो लौकिक और वैदिक ज्ञान का आधार है वह जड़ नहीं है क्योंकि ज्ञानी और जड़ यह परस्पर विरुद्ध है जिसमें ज्ञान है वह चेतन का गुण है।

शिवसंकल्प ऋषिः। मनो देवता। स्वराट त्रिष्टुप् छन्द। धैवतः स्वरः।
ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्
प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। यजु०अ०३४मं०६

पदार्थ—यत् जो मन सुषारथिः जैसे सुन्दर सारथि चतुर गाड़ीवान अश्वानिव घोड़ों को लगाम से चलाता है एवं मनुष्यान् मनुष्यादि प्राणियों को नेनीयते इधर-उधर भ्रमाता है तथा अभीशुभिः जैसे रस्सियों से वाजिन वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में करता है एवं नियम में रखता है और यत् जो हृत्प्रतिष्ठम् हृदय में स्थित अजिरं विषयादि में प्रेरक वा जरा आदि अवस्था रहित जविष्ठं अत्यन्त वेगशील है—तत् वह मे मेरा मनः मन शिवसंकल्पम् मंगलमय नियम में इष्टं अस्तु हो।

भावार्थ—जो प्राणी जिससे आसक्त है उसी में लगाम से घोड़ों को सारथि के सदृश वश में करके ले जाता है।

सर्व अविद्वान् जिसके वश में होते हैं और विद्वान् जिसे स्ववश में रखते हैं तथा जो शुद्ध हुआ सुखदायी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी एवं जीता हुआ सिद्धि तथा न जिता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यों को सदा स्ववश में रखना चाहिये। महर्षि दयानन्द कृत भाष्य।

यजु० अ० ३४ मं० १ से ६ तक

जैसे सारथि एवं सवार घोड़ों को लगाम के संकेत से जहां चाहे वहां ले जाता है एवं जो प्राणियों को बलपूर्वक जहाँ चाहे वहाँ भ्रमण कराता है ऐसी शरीर में क्या शक्ति है तथा मंत्र ६ में जिसे अजिरं जीर्णावस्था शून्य एवं मंत्र ३ तथा मंत्र ४ में अमृत वर्णन किया है वही मन है तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४ अ० ४ ब्रा० ३ कण्डिका ९ में कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरः धृतिह्रीर्धी भीरित्येतत् सर्वं मनः एव तस्माद् अपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति अर्थ शुभगुणों की इच्छा संकल्प संशय श्रद्धा अश्रद्धा धृति-धैर्य अधृति अधैर्य ह्री लज्जा धीः बुद्धि मेधा भी भय आदि सर्व गुणों का नाम मन है और वे आत्मा के गुण हैं। जड़ कदापि नहीं हो सकते। जो मन को जड़ मानते हैं उन्हें मन का आकार तथा शरीर के स्थान बताना होगा जहाँ पर मन रहता है तथा वह नित्य नहीं हो सकता।

मोक्ष प्राप्ति के अर्थ योग

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे न स्वर्ग्याय शक्त्या। य० ११/२

सर्वमनुष्या एवमिच्छेयुः	सर्वजन ऐसी इच्छा करें कि
स्वर्ग्याय मोक्ष सुखाय शक्त्या	स्वर्ग्याय मोक्ष सुख के अर्थ शक्त्या
योगबलोन्नत्या देवस्य स्वप्रकाश	योग बल की उन्नति से देव स्वप्रकाश
स्यानन्दस्य सवितुः सर्वान्तर्यामिनः	एवं आनन्दप्रद सर्वान्तर्यामी

परमेश्वरस्य सर्वे अनन्तैश्वर्ये युक्तेन योगयुक्तेन मनसा शुद्धान्तःकरणेन वयं सदोप-युञ्जीमहीति	परमेश्वर के सर्वे अनन्त ऐश्वर्य में युक्तेन योगयुक्त मनसा शुद्धान्तः करण से वयं हम सदा संयुक्त रहें

भावार्थ—इस मन्त्र में मोक्ष के आनन्द की अभिलाषा है। जो मुक्त होना चाहे वह प्रथम योग से अपने अविद्यादि मलों का विनाश करके यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है। जब तक अविद्यादि मल हैं तब तक मुक्ति कहाँ अतः योगाभ्यास का प्रयोजन मोक्ष है और मोक्ष के लिये विवेक वैराग्य षट्क सम्पत्तिः मुमुक्षुत्वादि ६ साधन सम्पन्न होना परमावश्यक है। इन षट् साधनों का विशेष विवेचन सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ९ में है। मोक्ष के इच्छुक ९वें समुल्लास का अध्ययन मननादि करें।

सत्य एवं प्रेम से भक्तिकर्ता को मोक्ष का विधान

युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्। य० अ० ११मं० ३

एवं योगाभ्यासेन कृतेन	इस वैदिक विधि से योगाभ्यास करने पर।
स्वर्यतः शुद्ध भाव प्रेम्णा देवान् उपासकान् योगिनः सविता अन्तर्यामीश्वरः कृपया	स्वर्यतः शुद्ध भाव एवं प्रेम से देवान् उपासक देव योगिजनों को सविता अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी कृपा दृष्टि से
युक्त्वाय-तदात्मसु प्रकाश करणेन सम्यक् युक्त्वा धिया स्वकृपाधारवृत्त्या बृहत् अनन्त	युक्त्वाय उनके आत्मा में प्रकाश कर के अच्छे प्रकार संयुक्त होकर धिया स्वकृपा रूप आधार वृत्ति से बृहत् अनन्त।

ज्योतिः प्रकाशं दिवं-दिव्यं स्व स्वरूपं	ज्योतिः प्रकाश एवं दिवं-दिव्य स्वरूप
प्रसुवाति-प्रकाशयति तथा करिष्यतः	को प्रसुवाति-प्रकट करता है तथा
सत्य भक्ति करिष्यमाणानुपासकान्	सत्य भक्तिकर्ता उपासक
योगिनः सविता परमकारुणिक	योगियों को सविता परम करुणामय
अन्तर्यामीश्वरो मोक्षदानेन	मोक्ष पद प्रदान करके अन्तर्यामी घट-घट का ज्ञाता ईश्वर
सदानन्दयतीति	सदा आनन्दित करता है

अर्थात् जो शुद्ध प्रेमभाव से भगवान् की उपासना करते हैं उनके आत्मा में परमात्मा कृपा करके स्व स्वरूप का प्रकाश तथा मोक्ष प्रदान करता है किन्तु सत्य शुद्ध भक्ति आवश्यक है।

उपासक के प्रति परमेश्वर की प्रतिज्ञा.

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

य० अ० ११ मं० ५,

उपासनाप्रदोपासनाग्रहीतारौ प्रति	उपासना के उपदेष्टा एवं शिष्य दोनों के प्रति
परमेश्वरः प्रतिजानीते। यदा तौ	परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि जब तुम दोनों
पूर्व्यम् पुरातनं सनातनं ब्रह्म	पूर्व्यं-पुरातन सनातन ब्रह्म को
स्थिरेणात्मना सत्यभावेन नमोभि-	स्थिर आत्मा एवं सत्यभाव से नमोभिः
र्नमस्कारैरुपासते तदा तद् ब्रह्म	नमस्कार नम्रभाव से उपासना करोगे
ताभ्यामाशीर्ददाति। श्लोकः	तब वह ब्रह्म तुम दोनों गुरु शिष्यों को आशीर्वाद
सत्यकीर्तिः वां वि एतु	व्येतु देता है कि श्लोकः सत्यकीर्ति वां-व्येतु-तुमको

व्याप्नोतु कस्य केव-सूरे	प्राप्त हो किसको किसके तुल्य सूरे
परमविदुषः पथ्येव धर्मे	परम विद्वान् को पथिएव धर्म के मार्ग में
मार्गे-इव । ये-एवं य उपासकाः	जैसे प्राप्त होती है वैसे जो उपासक हैं उनको
अमृतस्य-मोक्ष स्वरूपस्य	प्राप्त हो अमृतस्य-मोक्षरूप-नित्यमुक्त
नित्यस्य परमेश्वरस्य पुत्राः	नित्य परमेश्वर के पुत्राः ईश्वर के आज्ञाकारी
तदाज्ञानुष्ठातारः तत् सेवकाः सन्ति	ईश्वर के सेवक हैं वे अर्थात्
त एव दिव्यानि-प्रकाश स्वरूपाणि	वे ही दिव्यानि प्रकाश स्वरूप
विद्योपासना युक्तानि	विद्या एवं उपासना से युक्त
कर्माणि तथा दिव्यानि धामानि	कर्मों को तथा दिव्य धामनाम
सुखस्वरूपाणि जन्मानि सुख-युक्तानि स्थानानि वा	सुख स्वरूप जन्मों को तथा सुखद स्थानों को
आ तस्थुः आ समन्तात् तेषु स्थिरा भवन्ति । ते विश्वे	आतस्थुः सर्वोत्तम प्रकार से उनमें स्थिर होते हैं वे ही
सर्वे वां उपासनोपदेष्टृ्पदेश्यौं द्वौ शृण्वन्तु प्रख्यातौ	विश्वे सर्व उपासना का उपदेष्टा तथा उपासना का कर्ता वे दोनों शृण्वन्तु
जानन्तु । इत्यनेन प्रकारेणोपा-सनां कुर्वाणौ वां युवां द्वौ प्रती-	स्पष्ट रूप से सुनें इस प्रकार दोनों के प्रति
श्वरोऽहं युजे कृपया संवेतो भवामीति-	ईश्वर प्रतिज्ञा करता है कि मैं स्व· कृपा से संयुक्त होता हूँ ।

अर्थात् जो पूर्णसनातन ब्रह्म के उपासक हैं वे ही सुखद कर्म करते तथा पूर्ण विद्या एवं सुखद जन्मों को प्राप्त होते हैं और उत्तम योग्यता के पद प्राप्त करते हैं। जिनको ईश्वर का दर्शन होता है वे सर्व क्लेशों को पार करते हैं। यह विधान इस मन्त्र में है अर्थात् ईश्वर के उपासक अवश्य ही देव शरीर प्राप्त करते हैं और ईश्वर के आदेश को आत्मा में प्राप्त करके वे शीघ्र ही

उपासना के मार्ग पर चल देते हैं ।

भावार्थ—जब उपासक सत्यभाव एवं स्थिर चित्त से परमेश्वर की उपासना करते हैं तब उनका यश कीर्ति संसार में व्याप्त होती है और उपासना मनसा परिक्रमा के ६ मंत्रों से अवश्य करे, तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इत्यादि क्योंकि इन मंत्रों में ईश्वर को सर्वत्र देखा जाता है ।

नाड़ियों में उपासना का विधान

सीरा युन्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया । य० अ० १२ म० ६७ ।

कवयः विद्वांसः क्रान्तदर्शिन क्रान्तप्रज्ञा वा धीराः ध्यान-	कवयः विद्वान् क्रान्तदर्शी जन वा क्रान्त विचित्र बुद्धि (धीराः ध्यान कर्ता) वे
वन्तो योगिनः पृथक् विभागेन सीराः योगाभ्यासोपासनार्थं	योगी जन पृथक् विभाग से क्रम से सीराः योगाभ्यास उपासना के अर्थ प्राण आदित्य
प्राणदात्ययुक्ता नाडी युंजन्ति	से युक्त नाड़ियों को संयुक्त करते हैं अर्थात् उनमें परमात्मा को
तासु परमात्मानं ज्ञातुमभ्यसन्ति	जानने के लिए अभ्यास करते हैं
तथा युगा-युगानि योगयुक्तानि एवं कर्माणि वितन्वते विस्तारयन्ति	युगा योगयुक्त समाधि के लिए कर्म करते हैं वितन्वते उनका विस्तार करते हैं
य एव कुर्वन्ति ते देवेषु विद्वत्सु योगिषु सुम्नया सुखेनैव स्थित्वा परमानन्दं युन्जन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः	जो ऐसा करते हैं वे देवेषु विद्वान् योगियों में सुम्नया सुख से स्थिर होके परमानन्द मोक्ष को युन्जन्ति प्राप्त करते हैं ।

यह प्रयोजन है कि जो परमेश्वर को स्वदेह के मूर्द्धा सुषुम्नादि नाड़ियों में अभ्यास करके निश्चय करते हैं वे सुखपूर्वक योगियों में स्थिर होकर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं।

वस्तुत: सिद्ध योगी ही जीवन मुक्ति प्राप्त करके नित्य मुक्ति प्राप्त करता है अन्य नहीं तथा प्राण अपान की जो सदा गति होती है उसे प्रयत्नपूर्वक देखे कि यह वायु किस किस स्थान शरीर में जाता है।

॥ पुनः नाड़ियों में योग का विधान ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजं।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ॥

भाष्यं—हे योगिनो यूयं योगाभ्यासोपासनेन परमात्मयोगेनानन्दं युनक्त	हे योगीजनों आप योगाभ्यास के उपासना से परमात्मा के योग से आनन्द
तद् युक्ता भवत: । एवं मोक्ष सुखं	युक्त हो जाओ इस प्रकार मोक्ष:
सदा वितनुध्वं विस्तारयत	सुख का सदा वितनुध्वं विस्तार करो
तथा उपासनायुक्तानि कर्माणि	तथा उपासना से युक्त कर्मों को तथा
सीरा: प्राणादित्ययुक्ता नाडीश्च	सीरा: प्राण से युक्त नाड़ियों को
युनक्तोपासना कर्माणि योजयत	युनक्त उपासना के कर्मों में संयुक्त
एवं कृते योनौ शुद्धेऽन्त:करणे	करो इस प्रकार करके योनौ अन्त:करण को शुद्ध
कृते परमानन्द योनौ कारण	करके परमानन्द योनि कारण
आत्मीनि उपासना विधानेन	में तथा आत्मा में उपासना के प्रकार से
योगोपासनायाविज्ञानाख्यं	योगोपासना के बीज-विज्ञान नामक
बीजं वयन तथा गिरा च वेद	बीज का वपन करो तथा गिरा वेद
वाण्याविद्याया युनक्त युक्ता भवत	वाणी से विद्या से युक्त हो जावो
किञ्च श्रुष्टि: क्षिप्रं शीघ्रं योग फलं	और श्रुष्टि शीघ्र योग का फल

नेदीयोऽतिशयेन निकटं परमेश्वरानु-	हमारे नेदीय अत्यंत निकट परमेश्वर के
ग्रहेण असत् अस्तु कथं भूतं फलं	अनुग्रह से असत् हों वह कैसा फल है यह प्रश्न है
पक्वं शुद्धानन्द सिद्धम् एयात्	इसका उत्तर पक्वं शुद्धानन्द सिद्ध
प्राप्नुयात्	एयात् प्राप्त हो
सृण्यः उपासनायुक्ता योगवृत्तयः	सृण्यः उपासना से युक्त योग की वृत्तियें ही
सर्वं क्लेश हन्त्य एव भवन्ति इत् इति	सृण्य सर्वं क्लेशों की हन्ता होती हैं इत्
निश्चयार्थे पुनः कथं भूतास्ताः सभराः	यह निश्चयार्थं है फिर वह कैसी हैं
शान्त्यादि गुण पुष्टा एताभिः वृत्तिभि	सभराः शान्त्यादि गुणों से पुष्ट इन
परमात्मयोगं वितनुध्व	वृत्तियों से परमात्मा के योग को वितनुध्वं विस्तृत करो ।

इस मंत्र में नाड़ियों में योगाभ्यास का विधान तथा योगजन्य विज्ञान बीज को अपने आत्मा में वपन करे तथा ईश्वर कृपा से योग का परिपक्व विज्ञान रूप फल शीघ्र प्राप्त हो क्योंकि योग की वृत्ति शान्तिप्रद एवम् सर्व क्लेश नाशक होती है अतः उपासक परमेश्वर प्राप्ति परमपद के योग का विस्तार करे ।

।। योग के २८ साधन ।।

योग साधनों से क्षेम कुशल प्राप्त करे
क्षेम कुशल से योग सिद्धि करें

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे
योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ।

अथर्व० का० १९ सू० ८ मं० २

भाष्य—अष्टा हे परमेश्वर भगवन् कृपया अष्टाविंशानि-शिवानि कल्याणानि-कल्याणकारकाणि सन्तु अर्थात् दशेन्द्रियाणि दश प्राणाः मनो बुद्धि चित्ताहंकार विद्या स्वभाव शरीर बलं चेति शग्मानि सुखकारकाणि भूत्वा अहोरात्राभ्यां दिवसे रात्री चोपासना व्यवहारं योगं मे मम भजन्तु सेवन्तां तथा भवत् कृपया अहं योगं प्राप्य क्षेमं च प्रपद्ये क्षेमं प्राप्य योगं च प्रपद्ये यतोऽस्माकं सहायकारी भवान् भवेदेतदर्थं सततं नमोऽस्तु ते निरन्तर नमः।

हे परमेश्वर भगवन् आपकी कृपा से अष्टाविंशानि अट्ठाईस शिवानि कल्याणकारक कल्याणमय हों अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय तथा दश प्राण एवम् मन बुद्धि चित्त अहंकार विद्या स्वभाव शरीर और बल में ये २८ मेरी शक्ति शग्मानि सुख कारक होकर सुखद हों तथा अहोरात्राभ्यां दिन रात उपासना के व्यवहार मेरे योग का सेवन करें और आपकी कृपा से मैं योग को प्राप्त होकर क्षेम प्राप्त होके क्षेम कुशल को प्राप्त हो जाऊँ और क्षेम कुशल से योग को प्रपद्ये प्राप्त हो जाऊँ जिससे कि हमारे सहायकारी आप हों। इसलिए मेरा निरन्तर नमो नमस्ते हो।

योग के २८ साधनों को उपासक रात-दिन में अर्थात् अधिक से अधिक समय तक योगाभ्यास में संयुक्त करे ५ प्राण, ५ उपप्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल ये सब साधन आदि में केवल योगोपासना में लगें।

॥ ईश्वर स्वरूप का वर्णन ॥

भूयानरात्याः शच्यापतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभुरिति त्वोपासमहे वयम्।
अथर्व० का० १९ सू० १३ मं० ४७।

भाष्यम्—हे इन्द्र परमेश्वर त्वं	हे इन्द्र परमेश्वर आप शच्याः
शच्याः प्रज्ञायाः वाण्याः कर्मणो वा	प्रज्ञा बुद्धि वाणी एवं कर्म का
पतिरसि तथा भूयान् सर्वशक्ति-	पतिः रक्षक असि हैं तथा भूयान् सर्व
मत्वात् सर्वोत्कृष्टत्वादतिशयेन	शक्तिमान् होने से सर्वोत्कृष्ट अतिशय करके
बहुरसि तथा अरात्याः शत्रु भूतायाः	बहु है तथा अरात्याः शत्रु स्वरूप
वाण्यास्तादृशस्य कर्मणो वा शत्रु-	वाण्याः वाणी वा तत् सदृश कर्म के शत्रु
रर्थाद् भूयन्निवारकोसि	अर्थात् महान् निवारक हो तथा
विभूः व्यापकः प्रभुः	विभूः व्यापक और प्रभुः
समर्थश्चासि इति अनेन प्रकारेणैवं	समर्थ भी हो इति इस प्रकार से
भूतंत्वा त्वां वयं सदैव उपास-	ऐसे आपको जानकर वयं हम सदा ही
महे अर्थात् तवैवोपासनां	उपासना करें अर्थात् आपकी ही
कुर्महे इति	उपासना करें इति यह प्रयोजन है।

इसमें परमेश्वर के गुण कर्मों का विधान है अर्थात् ईश्वर कर्म वाणी बुद्धि आदि का पति तथा महान् विभूः व्यापक प्रभुः समर्थ है अतः उसे कर्म-वाणी बुद्धि का पति एवं विभू प्रभु समर्थ मानकर उपासना करें और शत्रु जनों के निवारक हैं।

ईश्वर को समक्ष देखकर उपासना करे

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अथर्व० १९ सू० १३४ मं ४८

ईश्वरो अभिवदति ऐ मनुष्याः	ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो
यूयमुपासना	तुम उपासना की
रीत्या सदैवमा पश्यत सम्यक् ज्ञात्वा	विधि से सदा मुझे देखो और जान
चरत। उपासक एवं जानीयात् वदेच्च	करवैसे आचरण करो। उपासक ऐसे जाने और कहे

हे परमेश्वरानन्तविद्यायुक्त नमस्ते अस्तु ते तुभ्यमस्माकं सततं नमोऽस्तु भवतु	कि हे ईश अनन्तविद्यायुक्त नमस्ते अस्तु आपको हमारा सदा नमो नमस्तेऽस्तु।

जो समक्ष होता है उसी का नमस्ते आदि शब्दों से सत्कार वाणी से होता है जो दूर है उसको पत्रादि के द्वारा नमस्ते करते हैं अतः परमेश्वर को प्रत्यक्ष मानकर इस मंत्र में नमस्ते शब्द से सत्कार किया है जैसे पृथिवी के रूप रस गन्धादि का प्रत्यक्ष नेत्रों के द्वारा तथा रसना एवं घ्राण इन्द्रिय से होता है एवं सृष्टि में ज्ञानादि गुण तथा सृष्टि की रचना आदि कर्म तथा नित्य पवित्र सत्चित् आनन्द स्वरूप आदि गुणों से परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है जैसे जीवात्मा का प्रत्यक्ष अहमस्मि मैं हूँ का ज्ञान सबको होता है जीव के गुण कर्म स्वभावादि से अतः परमेश्वर प्रत्यक्ष है।

इस मंत्र में भी ईश्वर के स्वरूप का विधान है

अम्भो महः सहः इति त्वोपासमहे वयम्। अ० का० १३ सू० मं० ५०।

हे ब्रह्मन् अम्भः व्यापकं शान्त स्वरूपं	हे ब्रह्मन् आप अम्भः व्यापक शान्त स्वरूप।
जलवत् प्राणस्यापि प्राणं आप्लृ व्याप्तौ	जल के समान प्राण के भी प्रिय
असुन् प्रत्यायान्तस्यायं प्रयोग	आप्लृ धातु का यह प्रयोग है। तथा
अमः ज्ञान स्वरूपं महः पूज्यं	अमः ज्ञानस्वरूप महः पूज्य एवं
सर्वेभ्यो महत्तर सहः सहनस्वभावं	सबसे महान् सहः सहनस्वभाव
ब्रह्म त्वा त्वां ज्ञात्वा इति अनेन	हे ब्रह्मन् त्वा आपको इस प्रकार
प्रकारेण वयं सततं उपासमहे	जानकर वयं हम सदा उपासना करते हैं

अर्थात् ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसकी उपासना निकटता में सदा निवास करें कि वह व्यापक शान्त तथा ज्ञान स्वरूप है उसे महान् शान्त सहनशील

जानकर उपसना करे अर्थात् उसे कभी न भूले जैसे सहयोगी मित्र सदा समक्ष एवं विश्वस्त होता है एवम् परमेश्वर को जाने ।

"पुनरपि ब्रह्मस्वरूप का वर्णन"

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास महे वयम्

अथर्व. कां. १३ सू. ५१ ।

अम्भः आदरार्थो द्विरारम्भः	यह अम्भ शब्द आदर के लिए दोवारा पढ़ा गया है और इसका अर्थ
अस्यार्थ उक्तः अरुणं प्रकाशस्वरूपं	कह दिया है । अरुणं-प्रकाशस्वरूप
रजतं-रागविषयमानन्द स्वरूपम्	रजतं-रागविषय एवं आनन्दस्वरूप
रजः सर्वलोकैश्वर्यं सहितं	रजः सर्वलोक ऐश्वर्य सहित सहः
सह : सहनशक्तिप्रदं इति त्वोपासमहे	सहन शक्ति का दाता इति-ऐसा मान के आप की उपासना करें वा
वय त्वां विहाय नैव कश्चिदन्योर्थः	हम आपको त्यागकर किसी अन्य की उपासना न करें
कस्यचिदुपास्योऽस्तीति	वा उपास्य न मानें ।

ब्रह्म के स्थान में अन्य किसी को उपास्य देव न माने क्योंकि वह सर्व प्रिय है उससे प्रिय अन्य नहीं है । ये सर्व प्रिय एक जन्म के हैं वह सदा से प्रिय है और आगे भी प्रिय ही रहेगा संसारी प्रिय वहुधा शत्रु भी हो जाते है परन्तु परमेश्वर प्रिय ही रहता है कभी किसी का शत्रु नहीं होता वह सदा मित्र और सर्व मित्र है ऐसा कोई अन्य नहीं है ।

"पुनरपि ब्रह्मस्वरूप वर्णन"

उरुः पृथुः सुभूर्भुवः इति त्वा उपासमहे वयम्

अथर्व. कां. १३ मं. ५२ ।

उरुः सर्वशक्तिमान् पृथुः अतीव विस्तृतः व्यापकः सुभूः सुष्ठुतया सर्वेषु पदार्थेषु भवतीति सुभूः	उरुः सर्वशक्तिमान पृथुः अत्यंत विशाल व्यापक सुभूः अच्छे प्रकार से जो सर्व पदार्थों में वर्त्तमान हो वहसुभूः
अन्तरिक्षवदवकाशरूपत्वाद् भुवः	भुवः जो अन्तरिक्षके तुल्य अवकाश रूप है वह भुवः
इति एवं ज्ञात्वा त्वा त्वां उपासमहे वयम् ।	इति ऐसा जानकर आपकी उपासना हम करें ।

अर्थात् हे ब्रह्मन् हम आप की विशाल तथा सर्व पदार्थों में व्यापक उरुः सर्वशक्तिमान् अन्तरिक्ष के समकक्ष अवकाश दाता मानकर उपासना करें ।

।। अनेक विध ब्रह्म की उपासना ।।

प्रथो वरो व्यचो लोक इतित्वोपासमहे वयम् ।

अथर्व. कां. १३ मं. ५३

प्रथो- सर्वं जगत् प्रकाशकः । वरः श्रेष्ठः । व्यचः विविधतया सर्वं जगत् जानातीति लोकः लोक्यते सर्वैं जं.लक्यति सर्वान् वा इति-त्वा वदृयं-ईक् स्वरूपं सर्वज्ञं त्वा-त्वां उपासमहे ।	प्रथः जगत् का प्रकाशक । वरः सर्व श्रेष्ठ । व्यचः नाना जगत् का ज्ञाता: लोका जो सर्व जनों से जानने योग्य वा सर्व को ज्ञानदाता है इति इस प्रकार जान के सर्वज्ञ आपकी हम उपासना करते हैं

इस मंत्र में सर्व जगत् का ज्ञाता सर्व जगत् प्रकाशक सवश्रेष्ठ एवं विविध विध ब्रह्म की उपासना का विधान है क्योंकि मानव कभी सर्वज्ञ नहीं होता जो एक देशी है वह सर्वज्ञ कैसा ?

।। पुनः ब्रह्मोपासना का विधान ।।

युन्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परित- स्थुष   रोचन्ते रोचना दिवि ।

ये योगिनो विद्वांसः परितस्थुषः	जो योगी विद्वान् जनपरितस्थुषः
परितः सर्वतः सर्वान् जगत्पदार्थान् मनुष्यान् वा	सर्व प्रकार से सर्व जगत् को वा सर्व मनुष्यादि को
चरन्तं ज्ञातारं सर्वज्ञं अरुपंअहिंसकं	जानने हारे सर्वज्ञ एवं अरुपं-अहिंसकं
करुणामयं रुष हिंसायां ब्रध्न विद्या योगाभ्यास प्रेम भारेण सर्वानन्द	करुणामय रुष धातु हिंसार्थक है । ब्रध्न विद्यायोगाभ्यास प्रेमभार से आनन्द के
वर्धकं महान्तं परमेश्वरं आत्मना सह युज्जन्ति	वर्धक महान् परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं
रोचना-आनन्दे प्रकाशित रुचिमया भूत्वा दिवि द्योतनात्मके सर्वे प्रकाशके परमेश्वरे रोचन्ते परमानन्द योगेन प्रकाशन्ते	वे आनन्द से प्रकाशित रोचना रुचिमय हो के दिवि-द्योतनात्मक सर्व प्रकाशक परमेश्वर में परमानन्द को प्राप्त करके प्रकाशित होते हैं

इस मन्त्र में परमेश्वर को स्वात्मा से संयुक्त करने का विधान है । जो आत्मा को परमात्मा के साथ संयुक्त करते हैं वे रुचिमय दीप्त होकर परमेश्वर में स्थिर होते हैं ।

प्राणायाम से ब्रह्म प्राप्ति का विधान

अथद्वितीयोऽर्थः—अब इस मन्त्र का दूसरा अर्थ करते हैं ।

ये उपासकाः परितस्थुषः सर्वान्	जो उपासक परितस्थुषः सर्व पदार्थों

पार्थादन् चरन्तं सर्वमर्मस्थं ब्रह्म	को गतिप्रद सर्व मर्म स्थल में विचार
सर्वावयव	करने हारे (ब्रध्नंसर्वा वयवों)
वृद्धिकरं प्राणमादित्यं प्राणायाम	के वर्धक प्राण को प्राणायाम की
रीत्या दिवि द्योतनात्मके परमेश्वरे	विधि से दिवि-द्योतनात्मक परमेश्वर में
वर्तमानं रोचना-रुचिमन्तः सन्तः	वर्तमान हो के रोचना-देदीप्यमान हो के
युञ्जन्ति युक्तं कुर्वन्ति अतः ते	युञ्जन्ति-संयुक्त करते हैं अतः वे उस
तस्मिन् मोक्षानन्दे परमेश्वरे	मोक्षान्द परमेश्वर में
रोचन्ते सदैव प्रकाशन्ते	रोचन्ते सदा प्रकाशित होते हैं ।

अर्थात जो प्राणायाम की विधि से प्राणायाम करते हैं वे परमेश्वर को प्राप्त करते हैं क्योंकि प्राणायाम से अविद्यादि मल नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान-विज्ञान बढ़ कर उपासक मुक्ति तक पहुंच जाता है।

क्योंकि प्राण जीव की मुख्य शक्ति है जीव जब शयन करता है तब सर्व इन्द्रियां कार्य छोड़कर आत्मा में विलीन हो जाती हैं किन्तु प्राण उस समय भी शरीर की पहरेदार के समान रक्षा करता है तथा जीव की सर्व इन्द्रियाँ शरीर को त्याग कर चली जायें तब भी शरीर जीवित रहता है किन्तु प्राण के निकलने पर शरीर मृत हो जाता है।

इदानीमुपासना कथं रीत्या	ईश्वर की उपासना किस विधि से
कर्तव्येति लिख्यते	करनी चाहिये यह लिखते हैं।
तत्र शुद्ध देशे	जहाँ उपासना करे वह शुद्ध देश हो अर्थात धूली-धूम दुर्गन्ध रहित वायु हो
एकान्ते देशे	एकान्त देश हो अर्थात् कोलाहल-शून्य, सिंह-सर्प हिंसक प्राणी वर्जित तथा चोर आदि विधर्मियों से पृथक वन उपवन नदी तट पर्वतादि-मनोवांच्छित आश्रम हो
समाहितो भूत्वा	आसन लगाकर शान्त चित होकर बैठे

सर्वाणीन्द्रियाणि	सर्व ज्ञान कर्म इन्द्रियों के व्यापार को त्यागकर
मनश्चैकाग्रीकृत्य	और मन को एकाग्र एक परमेश्वर-परक जैसे भूखे व्यक्ति को अन्न जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं भाता एवं ईश्वर दर्शन की इच्छाकर प्राणायाम कर मन को वश करे तदनन्तर
सच्चिदानन्दस्वरूपमन्तर्यामिनं संचित्य	सत्-चित्-आनन्दस्वरूप अन्तर्यामी परमेश्वर का पुनः पुनः चिन्तन करके

जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है एवं व्यापक ब्रह्म में प्रवेश करे। तस्यैव स्तुति प्रार्थना नुष्ठाने—उस ब्रह्म कीं ही स्तुति प्रार्थना संध्यादि के मन्त्रों से सम्यक्कृत्वोपासनमेश्वरे—उपासना के विधान से ईश्वर में पुनः स्वात्मानं पुनः पुनः अपने मन को लगाये—अर्थात् अपने आत्मा के ऊपर नीचे। परमेश्वर को जानकर उसमें ही संलगयेत्—मग्न हो जाये। जैसे जल में प्रविष्ट होकर व्यक्ति जल के गुणों का अनुभव करता है एवं ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव का अनुभव करे अन्य चिन्तन मनन आदि न करे। यदि यह अवस्था अधिक समय रहेगी तो यही समाधि हो जायेगी।

अत्र पतंजलि महामुनिना	योग में पतंजलि महामुनि ने
स्वकृतसूत्रेषु वेदव्यास	अपने सूत्रों में तथा वेदव्यास जी ने
कृतभाष्ये चायमनुक्रमो	अपने भाष्य में योग का यह क्रम
योगशास्त्रे प्रदर्शितः	योगशास्त्र में दिखाया है प्रदर्शित किया है
तद् यथा	सो जैसे कि

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। यो० पा० १ सू० २॥

चित्त वृत्ति-निरोध का नाम योग है।

उपासना समये व्यवहार समये वा परमेश्वरादतिरिक्त विषयाद	उपासना के समय और व्यवहार समय में परमेश्वर के अतिरिक्त विषय से तथा

धर्मं व्यवहाराच्च	अधर्म के व्यवहार से मन की वृत्ति सदा निरुद्ध रखनी चाहिये ।
मनसोवृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणीयेति-	अर्थात् उपासना काल में ईश्वर के अतिरिक्त सर्व विषयों से तथा व्यवहार समय में अधर्म से पृथक वृत्ति रखनी चाहिये ।
निरुद्धा सती सा क्वावतिष्ठते इत्यालोच्यते ।	वह चित्तवृत्ति निरुद्ध होने पर किस में स्थिर होती है इसका उत्तर देते हैं ।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । यो० पा० १ सू० ३ ।

यदा सर्वस्माद् व्यवहारान्मनोऽवरुध्यते तदास्योपसकस्य मनो द्रष्टुः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते-	जब सर्व ओर से मन रुक जाता है उस समय इस उपासक योगी का मन सर्वद्रष्टा परमेश्वर के स्वरूप में स्थिरता प्राप्त कर लेता है अर्थात् मन परमेश्वर के स्वरूप में स्थिर हो जाता है ।

प्रश्न—बहुधा विद्वान् इस सूत्र का यह अर्थ करते हैं कि जब उपासक की चित्तवृत्ति स्थिर हो जाती है तब द्रष्टा जीव अपने स्वरूप में स्थिर होता है।

उत्तर—यह व्यासभाष्य के विपरीत है। क्योंकि व्यासभाष्य में यह लिखा है कि स्वरूप प्रतिष्ठा तदानीं चिति शक्तिर्यथा कैवल्ये। निरुद्ध अवस्था में चिति शक्ति चेतन जीवात्मा की द्रष्टा परमेश्वर के रूप में स्थिति होती है जैसे कैवल्य(मोक्ष)में जीव की स्थिति होती है। इस दृष्टान्त से विवाद को स्थान ही नहीं है। क्योंकि जीव मुक्ति में ब्रह्मस्थ होता है स्वात्मस्थ तो सदा ही है। पढ़ो वेद—तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

यजु अ० ३१। मं० २८।

अर्थात् जीवात्मा परमेश्वर को जान कर ही अतिमृत्यु मोक्ष स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है। जन्म मृत्यु से मुक्ति(छूटने)का अन्य कोई मार्ग नहीं है। यदि जीवात्मा समाधि में भी स्वात्मस्थ रहेगा तो वह ब्रह्म को कैसे और कब जानेगा और ब्रह्म ज्ञान के अभाव में मोक्ष पद कैसे प्राप्त

करे॥ जिसकी अभिलाषा करता है। यत्र देवामृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त। योगीजन जिस आप के धाम स्वरूप में अमृत का पान करते हैं तथा स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं। यत्रानुकामं चरणं तत्र माममृतं कृधि। यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र ज्योतिरजस्रम्। यत्र कामा निकामाश्च तत्र माममृतं कृधि। ये सब मन्त्र ऋग्वेद मं० ६। सू० ११३ के हैं। इन सब में मोक्ष की इच्छा है जिसमें जीव के सर्व दुःखों का निवारण होता है अतः परमेश्वर प्राप्ति ही मोक्ष है। और सांख्यदर्शन में तो जीव की समाधि सुषुप्ति एवंम् मोक्ष में ब्रह्मरूपता मानी है। यदि जीव समाधिदशा में ब्रह्मस्थ नहीं तो ब्रह्मरूपता कैसी तथा वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं भी तो समाधि में ही कहता है।

प्रश्न—यदोपासको योग्युपासनां विहाय	जब उपासक योगी उपासना के अतिरिक्त अन्य
सांसारिक व्यवहारे प्रवर्त्तते तदा	सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त होता है तब उसकी
सांसारिक जनवत् तस्यापि प्रवृत्तिर्भवत्याहोस्विद् विलक्षणा इत्यत्राह	वृत्ति संसारी जनों के समान ही होती है अथवा विलक्षण होती है। इसका उत्तर

उत्तर—वृत्तिसारूप्यमितरत्र। यो० १।४।

सांसारिक व्यवहारे प्रवृत्तेऽप्युपासकस्य योगिनः शान्ताधर्मारूढा	सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त होने पर भी उपासक योगी की शान्त धर्मारूढ़ एव
विद्याविज्ञानप्रकाशा सत्यतत्वनिष्ठातीव तीव्रा साधारण मनुष्य विलक्षणापूर्वैव	विद्या विज्ञान प्रकाश सत्य तथा तत्वनिष्ठ अति तीव्र साधारण मनुष्यों से विलक्षण अपूर्व वृत्ति
वृत्तिर्भवतीति नैवेत्थमनुपासकानामयोगिनां कदापि इति।	होती है ऐसी अनुपासक अयोगियों की कदापि नहीं होती।

प्रश्न— बहुधाजन यह कहते हैं कि स्वामी जी का अर्थ व्यास भाष्य के विरुद्ध है क्योंकि व्यवहार काल में सबकी वृत्ति राजस एवं तामस होती है।

उत्तर—यह कल्पना मिथ्या है क्योंकि योगी तो महान् होता है, किन्तु धार्मिक विद्वान् पुरुषों की और अधार्मिक अविद्वानों की वृत्तियों में भी भेद

रहता है। यदि सबकी वृत्ति व्यवहार काल में एक समान ही रहे तब किस लिए धर्म और विद्याध्ययन किया जाये और योगांगों के अनुष्ठान मात्र से अशुद्धि का नाश तथा ज्ञान का प्रकाश होता है, पढ़ो योगदर्शन

योगांगानुष्ठा नादशुध्यक्षये ज्ञान दीप्ति राविवेक ख्याते:

यो. पा. २ सू. ५२।

इससे सिद्ध है कि ऋषिवर का अर्थ सत्य है क्योंकि योगी के प्रकाश का आवरणं नष्ट हो जाता है। ततः क्षीयते प्रकाशावरणं। यो. पा. २ सू. ५२। अर्थात् प्राणायामादि से अज्ञानावरण नष्ट हो जाता है।

प्रश्न—कति वृत्तयः सन्ति कथं निरोधव्या — कितनी वृत्ति हैं और उनका निरोध कैसे होता है ?

उत्तर—वृत्तयः पञ्चतव्या क्लिष्टा क्लिष्टाच । यो. पा. १ सू. ५।

अर्थ—क्लिष्ट क्लेशदायक विषय सेवन आदि युक्त तथा अक्लिष्ट जो कि सुखद शान्त धर्मारूढ़ हैं वे वृत्ति ५ प्रकार की हैं—

वृत्ति भेद—प्रमाण विपर्य्य विकल्प निद्रा स्मृतयः। यो. पा. १ सू. ६।

अर्थ—(१) प्रमाण (२) विपर्य्य (३) विकल्प (४) निद्रा और (५) स्मृति भेद से ५ प्रकार की हैं।

प्रमाण वृत्ति और उसके भेद

तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि । यो. पा. १ सू. ७।

अर्थ—तत्र—५ वृत्तियों के मध्य प्रत्यक्ष—इन्द्रियजन्य ज्ञान, अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक जैसे बादलों से वर्षा का अनुमान, बालकों से माता पिता का अनुमान। आगम—वेद वचन अथवाआप्त वचन ये तीन प्रमाण वृत्ति।

विपर्य्यय वृत्ति

विपर्य्ययो मिथ्या ज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम्। यो. पा. १ सू.८।

अर्थ—विपर्य्यय मिथ्या ज्ञान का नाम है। क्योंकि यह अतद्रूप अन्य में अन्य प्रतीत होता है। जैसे रज्जु में सर्प सीप में चाँदी अथवा पाषाण को परमेश्वर वा मनुष्य को परमेश्वर मानना इत्यादि मिथ्या ज्ञान विपर्य्यय है।

विकल्प वृत्ति का लक्षण—

शब्द ज्ञानानुपाति वस्तु शून्यो विकल्पः । यो. पा० १ सू०६ ।

अर्थ—जिसमें शब्द ज्ञानमात्र हो अर्थ कुछ भी न हो उसे विकल्पवृत्ति कहते हैं । जैसे कोई यह कहे कि आज हमने गन्धर्व नगर में शशश्रृंग धनुर्धर, खपुष्पमालाधारी वन्ध्यापुत्र का विवाह देखा था । इत्यादि वाक्य में शब्द व्यवहार मात्र है । अर्थ कुछ भी नहीं । तिष्ठति वाणः वाण ठहरता है--पुरुषस्य चैतन्यम्—पुरुष की चेतनता इत्यादि ।

निद्रा का लक्षण अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा । यो. पा० १ सू ० १० ।

अर्थ—जिसमें जगत् के पदार्थों का अभाव अनुभव हो वह वृत्ति निद्रा है । अर्थात् जैसे सुषुप्त प्रबुद्ध व्यक्ति यह कहता है कि आज मैं बड़े सुख से सोया वा दुःख से सोया—यह स्मरण है—स्मरण अनुभव के पश्चात् होता है । अतः निद्रा अवस्था का दृष्टा यह कथन कर सकता है किन्तु समाधि में इस ज्ञान का भी निरोध माना है

अनुभूतविषयासंप्रमोपः स्मृतिः । यो. पा० १ सू० ११ ।

अर्थ—अनुभव कृत विषय के असंप्रमोष को स्मृति कहते हैं । उसका विस्मृत न होना जैसा देखा सुना था वैसा ही स्मरण रहे यह स्मृति वृत्ति है । ये ५ वृत्ति ज्ञान हैं । ये ही योग से भ्रष्ट करते हैं । जब उपासना करें तब इस पांच प्रकार के ज्ञान से शून्य सतर्क होकर बैठे ।

पांच वृत्तियों के निरोध का उपाय—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः । यो० पा० १ सू० १२ ।

अर्थ—अभ्यास और वैराग्य से मनोवृत्तियों का निरोध होता है ।

अभ्यास का लक्षण

तत्रस्थितौ यत्नो अभ्यासः । यो० पा० १ सू. १६

अर्थ—मनोवृत्तियों के रोकने के लिए जो पुनः पुनः यत्न करना है वही अभ्यास है ।

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़ भूमिः ।१।१४

अर्थ—स तु दीर्घकाल	वह तो लम्बे समय तक आजीवन
नैरन्तर्य	प्रतिदिन निरन्तर सदा सत्कार-
सत्कार-सेवित	पूर्वक सेवन किया हुआ अभ्यास
दृढ़ भूमिः	स्थिर अविचल हो जाता है ।

दृष्टानुश्रविकविषय वितृष्णास्य वशीकार संज्ञावैराग्यम् ।

यो० पा० १ सू. १५

भाष्य—स्त्रियोऽन्नपानमैश्वर्यमिति	स्त्रियां भोज्य पदार्थ पिये जाने योग्य तथा चूसने एवं लेस्य दर्शनीय
दृष्ट विषये वितृष्णस्य	त्वग् विषय जो भी ऐश्वर्य कहे जाते हैं उन सर्व इन्द्रियों के विषयों में तृष्णा रहित योगी
स्वर्ग वैदेह्य प्र कृतिलयत्व	की तथा देशान्तर सुखद एवं प्रकृति लय नाम सुख-दुखशून्य दशा गाढ़
प्राप्तावानुश्रविकविषये	निद्रा सुषुप्ति आदि प्राप्त होने पर भी तथा देशान्तर में सुने हुए विषयों में भी
वितृष्णस्यादिव्यादिव्य विषये	तृष्णाशून्य योगी की अर्थात् दिव्य एवं अदिव्य विषय प्राप्त होने पर भी
संप्रयोगेऽपिचित्तस्य विषय	विषय भोग में दोष दृष्टा योगी जन की विषय भोग शून्य जो
दोषदर्शिनः प्रसंख्यान बलाद-	योगज ज्ञान के बल से प्राप्त विषय भोगों में अनिच्छा
नाभोगात्मिका हेयोपादेयशून्या	भोगों को न भोगने की अभिलाषा हेय त्याज्य एवं उपादेयता

वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।	से शून्य उदासीन भावना का नाम वशीकार संज्ञा है। उसे वैराग्य कहते हैं। अपर वैराग्य है।

अर्थात्—जितने विषय उपासक के अनुभव में आए हैं तथा जो सुने हैं उस प्रकार के सर्व विषयों में प्रवृत्ति के अभाव का नाम अपर वैराग्य है।

तत् परं पुरुष ख्यातेः गुण वैतृष्ण्यम् । योः१।१६॥

भाष्यं—दृष्टानुश्रविक विषय दोष दर्शीविरक्तः	देखे सुने विषयों में अर्थात् अनुभूत एवं श्रुत विषयों में दोष दृष्टा विरक्त
पुरुष दर्शनाभ्यासात् तच्छुद्धि	जन पुरुष परमेश्वर एवं स्वात्मदर्शन के अभ्यास से तथा उस दर्शन के
प्रविवेकाप्यायित बुद्धिर्गुणेभ्यो	विवेक से पूर्ण बुद्धि यौगीजन अर्थात् प्राकृतिक गुणों से जोकि व्यक्त
व्यक्ताव्यक्त धर्मकेभ्यो विरक्त	एवं अव्यक्त धर्म के गुणों से विरक्त है यह वैराग्य है पर।
इति तद्-द्वयं वैराग्यम् ।	ये वैराग्य अर्थात् परापर दो वैराग्य हैं।
तत्र यदुत्तरं तत् ज्ञानप्रसादमात्रं	उन में जो पर वैराग्य है वह तो यथार्थ ज्ञान मात्र है।
यस्योदये सति योगी प्रत्युदित ख्यातिरेवं मन्यते	जिसके उदय होने पर प्रत्युदित ख्याति योगी यह मानता है
प्राप्तं प्रापणीयं क्षेतव्या क्लेशाः	कि प्राप्तं प्रापणीयं-प्राप्त हो गया जो होना था तथा क्षीण करने योग्य
छिन्नः श्लिष्ट पर्वाभव संक्रमः	क्षीण हो गये ५ क्लेश नष्ट हो गया नाश करने योग्य संसार का कारण
यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते	जिसके विच्छिन्न न होने पर जन्म मृत्यु का चक्र सदा चलता है।
मृत्वा च जायते इति ज्ञानस्यैव	तथा जन्म पाकर मृत्यु, मृत्यु पाकर

पराकाष्ठा वैराग्यम् । एतस्यैव हि नान्तरायेकं कैवल्यम्-इति ।	जन्म सदा चलता है अतः वैराग्य का नाम ही कैवल्य है ।

प्रणिधान समर्पण का लक्षण

उपासनाया सिद्धेः सहकारि परमं साधनं किमस्तीत्यत्र उच्यते ।	उपासना की सिद्धि का सहायकारी परम साधन क्या है इस विषय में यहाँ विधान करते हैं ।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा । यो. पा. १ सू. २३।

प्रणिधानाद् भक्ति विशेषादा-	प्रणिधान नाम भक्ति विशेष से
वर्तित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्य	आवर्तित अपनी ओर अभिमुख किया ईश्वर
भिध्यानमात्रेण	उपासक को ग्रहण कर लेता है केवल ध्यान मात्र से
तदभिध्यानादपि योगिनः आसन्नतम समाधिलाभः	और उसके ध्यान से ही योगी को निकट भविष्य में समाधि लाभ
फलं च भवतीति ।	तथा समाधि का फल भी शीघ्र होता है । प्रणिधान नाम आत्म समर्पण का है ।

"ईश्वर का लक्षण"

प्र०—अथ प्रधान पुरुष व्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नामेति	अब यह लिखते हैं कि प्रधान प्रकृति-पुरुष-जीवात्मा के अतिरिक्त यह ईश्वर नाम की वस्तु क्या है ।

उ०—क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ।
यो. पा. १ सू. २४ ।

अविद्यादयः क्लेशाः-	अविद्या अस्मिता आदि ५ क्लेश हैं ।
कुशलाकुशलानि कर्माणि	कुशल अच्छे अकुशल बुरे कर्म होते हैं

तत्फलं विपाकः तदनुगुणा	उन शुभाशुभ कर्मों के फल का नाम विपाक है।
वासनाशयाः	उस कर्म फल के भोग से आत्मा में जो वासना होती है वह आशय है।
ते च मनसिवर्त्तमानाः पुरुषे व्यसहिपदिश्यन्ते तत् फलस्य	वे वासना मन में रहती हैं परन्तु आत्मा में कथन की जाती हैं क्योंकि वही आत्मा-जीवात्मा उस फल का
भोक्तेति। यथा जयः पराजयो वा योद्धषु वर्तमानाः	भोक्ता माना जाता है। जैसे जय और पराजय योद्धा सैनिकों की होती है परन्तु
स्वामिनि व्यपदिश्यन्ते	वह उनके स्वामी राजा की मानी जाती है।
यो ह्यनेन भोगेनापरामृष्टः	और जो इस भोग से असम्बद्ध है कभी
स पुरुष विशेषः ईश्वरः-	भोग से स्पर्श नहीं करता वही पुरुष विशेष ईश्वर है।
कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिनः ते हि	और जो मोक्ष को प्राप्त मुक्तात्मा हैं वे सब भी भोगों से असम्बद्ध हैं परन्तु मुक्त होने से पूर्व बद्ध थे।
त्रीणी-बन्धनानि छित्वा	वे तीनों बन्धनों को काटकर मुक्त हुए।
कैवल्यं प्राप्ताः ईश्वरस्य च तत्	परन्तु ईश्वर के बन्धन कभी न थे
संबन्धो न भूतो न भावी	और आगे भी ईश्वर जन्म जरा और मृत्यु के बन्धन में नहीं पड़ेगा।
यथा मुक्तस्य पूर्वाबन्धकोटिः	जैसे मुक्तात्मा की मुक्ति से पूर्व बन्ध
प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य।	कोटि थी इस प्रकार ईश्वर कभी बद्ध न था।

यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा बन्ध-	और जैसे प्रकृतिलीन प्रलयस्थ जीव को भविष्य में पुनः बन्ध होता है
कोटि संभाव्यते नैवमीश्वरस्य	इस प्रकार ईश्वर की बद्ध अवस्था न होगी
स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति ।	क्योंकि वह तो सदा मुक्त है तथा सदा ईश्वर है ।
प्रश्न—योऽसौ प्रकृष्ट सत्वोपा-	प्र०—जो यह सर्वश्रेष्ठ सत्व सत्ता के
दानात् ईश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्ष	होने से ईश्वर सदा मुक्त तत्व से ईश्वर का नित्य उत्कर्ष उच्चता है सर्वमहत्व है
स किं सनिमित्त आहोस्वित्	वह क्या निमित्त सहित है अथवा उसका
निर्निमित्त इति ।	निमित्त नहीं
उ.—तस्य शास्त्रं	उ.—उसका शास्त्र ज्ञान निमित्त है ।
निमित्तम् ।	जिससे ईश्वर विश्व का शासन करता है
प्र.—शास्त्रं पुनः किन्निमित्तं	प्र.—शास्त्र ज्ञान का क्या निमित्त कारण है ।
उ.—प्रकृष्ट सत्वनिमित्तं-	उ.—प्रकृष्ट-सर्वश्रेष्ठ सत्ता निमित्त है अर्थात् ईश्वर की सत्ता सर्वश्रेष्ठ महान् है ।
एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोः	ये जो शासकत्व जो कि सर्वोन्नत तत्व
ईश्वर सत्वे वर्त्तमानयो-	ईश्वर में विद्यमान हैं इनका ईश्वर के साथ
रनादि सम्बन्धः । एतस्मादेतद्	अनादि अनन्त सम्बन्ध है । इससे यह
भवति तच्च तस्यैश्वर्यं	सिद्ध होता है कि वह सदा से ईश्वर एवं सदा मुक्त है । एतच्च—यह
साम्यातिशयविनिर्मुक्तं न तावदै-	उसका ऐश्वर्य साम्य समता तथा अतिशय-अधिकता से
श्वर्यान्तरेण तदतिशय्यते	मुक्त है और उसका ऐश्वर्य अन्य के ऐश्वर्य से तिरोहित (दबता) नहीं है अभिभूत नहीं होता दबता नहीं ।
यदेवातिशयो स्यात् तदेव तत्	यदि अन्य के ऐश्वर्य से न्यून हो तो

-स्यात्	जो अधिक है वही ईश्वर हो जायेगा।
तस्मात् यत्र काष्ठा प्राप्ति ऐश्वर्यस्य	अतः जिसमें ऐश्वर्य चरम सीमा को
स ईश्वरः।	प्राप्त हो जाय वही ईश्वर है और
न च तत् समानमै-	उसके तुल्य अन्य का ऐश्वर्य नहीं है
श्वर्यमस्ति कस्मात् द्वयोस्तुल्ययो-	क्योंकि दो समानों की एक वस्तु में
रेकस्मिन् युगपत् कामितेऽर्थे	एक साथ इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती
नवमिदमस्तु पुराणमिदमस्त्विति	एक कहे कि यह वस्तु नवीन हो अन्य
एकस्य सिद्धावितरस्य प्राकाम्यवि-	कहे कि यह पुरानी हो तब एक की
घाताद्नत्वं प्रसक्तं।	इच्छा पूर्ण होगी और दूसरे की इच्छा
	पूर्ण न होने से न्यूनता होगी।
द्वयोश्च तुल्ययोर्युगपत्	क्योंकि दो समानों की एक साथ एक
कामितार्थ प्राप्तिर्नास्ति कामिता-	वस्तु में इच्छा पूर्ण न होगी क्योंकि
र्थस्य विरुद्धत्वात्-	दोनों की इच्छा परस्पर विरुद्ध है। एक
तस्मात् यस्य साम्याति-	वस्तु एक समय में नवीन पुरानी कैसे
	होगी ? जिसका ऐश्वर्य समता तथा
शय विनिर्मुक्तमै-	अधिकता से भिन्न हो
श्वर्यं स ईश्वरः	किसी का ऐश्वर्य उसके ऐश्वर्य से
	अधिक वा समान न
स च पुरुष विशेष इति-	हो वही पुरुष विशेष ईश्वर है।
किञ्च	और भी इस विषय में कहते हैं कि
	ईश्वर सर्वाधिक है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। यो० पा० १ सू० २५।

	ईश्वर सर्वज्ञ है
यदिदमतीतानागतं प्रत्युत्	जो यह भूत भविष्यत् में प्रत्येक

यन्त्र प्रत्येक समुच्चयाति	समुच्चय संपूर्ण ज्ञेय वह अतीन्द्रिय है ।
इन्द्रियं ग्रहणमल्पं बह्विति	उसका थोड़ा घना ज्ञान सबको है व सब ही
सर्वज्ञ बीजमेतत् विवर्ध-	सर्वज्ञ बीज है। यह जिसमें बढ़ता
मानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः	बढ़ता सर्वाधिक हो जायेगा वही सर्वज्ञ है इसमें अनुमान भी है ।
अस्ति काष्ठा प्राप्ति सर्वं	सर्वं बीज की काष्ठा अन्तिम अवस्था है सूक्ष्म महान् ।
बीजस्य सातिशयत्वात् परिमाणवत्	क्योंकि वह सातिशय है परिमाण
इति यत्र काष्ठा प्राप्तिर्ज्ञानस्य	के सदृश जिसमें ज्ञान की काष्ठा चरम
स सर्वज्ञः स च पुरुष	सीमा है वह सर्वज्ञ है
विशेष इति ।	तथा वह पुरुष विशेष है ।
सामान्यामात्रोपसंहारे	सामान्यामात्र से सिद्ध है परन्तु विशेष है । विरुद्ध अनुमान
कृतोपक्षयमनुमानं न विशेष	पक्ष का पोषक नहीं है अर्थात् जिसमें
प्रतिपत्तौ समर्थमिति ।	सर्वाधिकता नहीं है वह ईश्वर भी
तस्य संज्ञादि विशेष प्रतिपत्तिरा-	नहीं है । उसके नाम आदि वेदादि से जानने चाहिए
गमतः पर्य्यन्वेष्ण तस्यात्मानु-	यद्यपि ईश्वर का अपना कोई प्रयो-
ग्रहभावेऽपि भूतानुग्रह प्रयोजनं ।	जन नहीं है परन्तु जीवों पर कृपा करना प्रयोजन है ।
ज्ञानधर्मोपदेशेन	वैदिक ज्ञान एवं उपदेश करके सर्व
कल्पप्रलय महाप्रलयेषु संसारिणः	जीवों को कल्प कल्पान्तर में
पुरुषान्नुद्धरिष्यामीति	संसारी पुरुषों का उद्धार करूंगा इत्यादि इच्छा से और अन्यत्र कहा
तथा चोक्तं आदि विद्वान्	भी है कि आदि विद्वान् परमेश्वर

निर्माणचित्तमधिष्ठाय	निर्माण चित्त का निर्मित चेतना का
कारुण्यात् भगवान् परमर्षि-रासुरमे जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाचेतिं।	आश्रय करके कृपा कर भगवान परम ऋषि ने आसुरमे प्राणधारी जीव के लिए तन्त्र वेद का उपदेश दिया है।

अर्थात् सर्व जीव दो प्रकार के हैं। एक वे जो वित्तैषणा पुत्रैषणा और लोकैषणा के बन्धन में बद्ध हैं। दूसरे वे हैं जो इन तीन बन्धनों को काट कर मुक्त हुए हैं किन्तु ईश्वर न कभी बद्ध था और न आगे भविष्य में बन्धन में आयेगा। किन्तु जो मुक्त है वह भी भविष्य में बन्धन में आयेगा क्योंकि मुक्ति नित्य नहीं है वह बन्धनों का भेदन करके मुक्त हुआ है अतः जिस सुख दुःख का आदि है उसका अन्त भी आवश्यक है। अतः केवल ब्रह्म ही नित्यमुक्त है और जो नित्यमुक्त है वही ईश्वर है। यह ईश्वर का ऐश्वर्य सर्व प्रधान है तथा संसार में भूत भविष्य एवं वर्त्तमान के सर्व जीव ज्ञाता हैं। कोई थोड़ा जानता है कोई अधिक जानता है परन्तु कोई जीव सर्वज्ञ नहीं। अतः जो भूत भविष्यत् वर्तमान एवं लघु महान् और अणु परमाणु तथा प्रकृति एवं महत्तत्व का ज्ञाता है वही ईश्वर है। यदि ऐसी शक्ति न मानी जाये तो सृष्टि रचना-पालन-धारण-नियम में रखना और कर्मफल आदि कैसे प्राप्त होंगे। ईश्वर अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष अभिनिवेश इन ५ क्लेशों से मुक्त है तथा अच्छे बुरे कर्म का फल भोग एवं वासना आदि से अनादि अनन्त मुक्त है।

॥ ईश्वर ही सर्वगुरु है ॥

स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। यो० पा० १ सू० २६

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते	पूर्वज गुरुजनों का काल से विभाग होता है।
	अर्थात् वे काल चक्र से कट गये मर गये
यत्रावच्छेदार्थेन कालो	किन्तु जिसमें अवच्छेद इयन्ता समाप्ति रूप से काल
न आ वर्त्तते स एषः	नहीं आता वह यह पूर्वज ब्रह्मा विष्णु

पूर्वेषामीपि गुरुः	आदि का भी गुरु है अर्थात् जो कभी नहीं मरता वह
यथाऽस्यसर्गस्यादौ प्रकर्ष	ईश्वर गुरु है तथा जैसे इस सृष्टि रचना समय में
गत्या सिद्धः तथातिक्रान्त	अपनी प्रकर्ष उच्चता से सिद्ध है
सर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः]	एवमेव वह गत सृष्टि रचना समय भी सिद्ध था तथा भविष्य में भीं वैसा ही सिद्ध रहेगा ।

प्रश्न—ब्रह्मा विष्णु महादेव भी ईश्वर थे अथवा नहीं ?

उत्तर—ब्रह्मा विष्णु महादेव राम कृष्ण तथा तीर्थंकर और गुरु भी ईश्वर न थे न हैं क्योंकि वे काल चक्र में आ चुके हैं अर्थात् जन्म लेकर मर चुके हैं तथा मरेंगे । सब जो देही है । परन्तु परमेश्वर वह है जो कभी जन्म मृत्यु के चक्र में नहीं आता है क्योंकि वो सदा एकरस नित्य मुक्त है और यह जो सर्व गुरु है जिसका अन्य कोई गुरु न हो वह ईश्वर है ।

।। ईश्वर का नाम प्रणव ओ३म् है ।।

तस्य वाचकः प्रणवः यो० पा० १ सू० २७ ।

वाच्य ईश्वरः प्रणवस्य	प्रणव ओ३म् शब्द का वाच्य ईश्वर है और ओ३म् नाम वाचक है ।
किमस्य संकेत कृतं वाच्य-	क्या ईश्वर एवं ओ३म् शब्द का संकेत कृतक किया हुआ है
वाचकत्वमथ प्रदीपप्रकाश-	वाच्य वाचकत्व है अथवा प्रदीप
वदवस्थितमिति	और प्रकाश के सदृश निश्चित है । इसका उत्तर—
स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन-	यह स्थित है ईश्वर वाच्य का वाचक ओ३म् नाम के

सह सम्बन्धः संकेतस्त्वीश्वरस्य-स्थितमेवार्थमभिनयति

साथ सम्बन्ध । और संकेत तो ईश्वर के निश्चित अर्थ का ही प्रकाश करता है।

यथा अवस्थितः पिता पुत्रयोः सम्बन्धः संकेतनावद्योत्यते अयमस्य पिता अयमस्य पुत्र इति

जैसे सुनिश्चित पिता पुत्र के सम्बन्ध को संकेत से कहा करते हैं बताते हैं कि यह इसका पिता है और यह इसका पुत्र है

सर्गान्तरेष्वपि वाच्यवाचक शक्त्यापेक्षस्तथैव संकेतः क्रियते सम्प्रति नित्यतया

अन्य सृष्टि रचना समय भी यह वाच्य वाचकत्व रहेगा क्योंकि यह शक्ति की अपेक्षा से वैसा ही संकेत किया जाता है। क्योंकि संप्रतिपत्ति ज्ञान नित्य है अतः

नित्यः शब्दार्थं सम्बन्धः इत्यागमिनः प्रतिजानते

शब्द अर्थ एवं शब्दार्थ सम्बन्ध भी नित्य है। इस कथन को वेदज्ञ जानते है क्योंकि जो है वह सब नित्य है। अभाव का भाव एवं भाव का अभाव कैसे होगा। जो पूर्व था वही अब है जो अब है वह भविष्य में भी रहेगा।

ओ३म् जप की विधि

विज्ञात वाच्य वाचकत्वस्य योगिनः

जाना है वाच्य ईश्वर वाचक ओ३म् नाम को जिस योगि महात्मा ने

तज्जपस्तदर्थभावनम् । यो० पा० १ सू० २८।

ओ३म जप और ओ३म के वाच्य की भावना करे ।

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना

प्रणव का जप और उसके अर्थ ओ३म् की भावना करे । जैसे किसी को अति प्रेम से बुलाते हैं

तदस्य योगिनः प्रणवं जपत	सो इस योगी का प्रणव को जपने से
प्रणवार्थंच भावयतश्चित्त-	तथा उसके अर्थ ईश्वर की भावना करने से
मेकाग्रं संपद्यते ।	चित्त एकाग्र स्थिर हो जाता है ।
तथा चोक्तम्	यही कथन अन्यत्र भी कहा है ।
स्वाध्यायाद् योगमासीत	स्वाध्याय से योगाभ्यास में स्थिर हो
योगात् स्वाध्यायमामनेत् ।	और योगाभ्यास से स्वाध्याय को बढ़ावे मनन करे ।
स्वाध्याय योग संपत्या	स्वाध्याय तथा योगाभ्यास की सम्पत्ति
परमात्मा प्रकाशते इति ।	संपन्नता से परमात्मा एवं स्वात्मा का प्रकाश ज्ञान होता है ।

ओ३म् जप की यह विधि है कि जैसे किसी कष्ट से बाधित प्राणी अपने रक्षक का आह्वान करता है एवं जन्म जरा तथा मृत्यु के दुःख से दुखित उपासक नित्यानन्द अमृत परमेश्वर का सत्य हृदय से स्मरण करे अन्य किसी वस्तु में रुचि न हो तो परमेश्वर अवश्य रक्षार्थ उपासक हृदय में प्रकट होता है क्योंकि वह ब्रह्म तो य आत्मदा बलदा अर्थात् वह आत्म ज्ञान एवं बल का दाता है

।। ईश्वर प्रणिधान का फल ।।

किंचास्य भवति	इस योगी का ईश्वर प्रणिधान से और क्या लाभ होता है ?

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च । यो० पा० १ सू० २९

ये तावदन्तराया व्याधि प्रभृतयय:	जो ये योग में अन्तराय विघ्न हैं व्याधि आदि
ते तावदीश्वर प्रणिधानान्न	वे ईश्वर प्रणिधान से नहीं होते तथा
भवन्ति स्वरूपदर्शनमप्यस्य	स्वरूप दर्शन भी होता है ।
भवति । यथैवेश्वरः पुरुषः शुद्धः	जैसे ईश्वर पुरुष शुद्ध एवं

प्रसन्नः केवलोऽनुपसर्ग तथा बुद्धेः प्रति वेद्यो यः पुरुष इत्येवमधिगच्छति—	प्रसन्न एक अनुपसर्ग सम्बन्ध शून्य है एवं यह बुद्धि से गम्य जीवात्मा पुरुष भी इसी प्रकार जाना जाता है।

जब उपासक सत्य मन से ईश्वर प्रणिधान स्वात्मा का समर्पण करता है तब जन्म जरा के जीर्ण ज्वर से जरजरीभूत जीव को जगदीश्वर की जाज्वल्यमान ज्योति का दर्शन होता है तथा स्वस्वरूप जो कि सत् चित रूप अनादि नित्य है जो केवल बुद्धिवेद्य है उसका भी भान होता है तथा व्याधि आदि सर्व विघ्न-बाधा नष्ट हो जाते हैं जो आगे के सूत्र में वर्णित है।

।। योग में बाधक ९ विघ्नों का स्वरूप ।।

के अन्तराया ये चित्तस्य विक्षेपा	अन्तराय कौन से हैं जो कि चित्त के विक्षेप हैं ?
के पुनस्ते कियन्तो वेति—	और वे कौन-कौन हैं तथा कितने हैं ?

व्याधि स्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः। यो० पा०१ सू० ३१।

नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपा सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्त्येतेषामभावेन भवन्ति पूर्वोक्ताश्चित्त वृत्तयः। व्याधि धातु रस करण वैषम्यं।	ये ९ अन्तराय चित्त के विक्षेप हैं। ये चित्त वृत्तियों के साथ होते हैं। इनके अभाव में प्रमाणादि पूर्वोक्त वृत्ति नहीं होती। व्याधि— धातु रस एवं करण की विषमता को कहते हैं।
स्त्यानकर्मण्यता चित्तस्य	स्त्यान—चित्त की अकर्मण्यता।
संशय—उभय कोटिस्पृक् विज्ञानं स्यादिदमेव नैवं स्यादिति।	संशय—दोनों प्रकार के ज्ञान का नाम है अर्थात् यह योग मार्ग सत्य है अथवा असत्य है।
प्रमादः—समाधि साधनानामभवनम्।	प्रमाद—नाम समाधि के साधनों का न करना।

आलस्यं—कायस्य चित्तस्य गुरुत्वादप्रवृत्तिः	आलस्य—शरीर एवं चित्त की गुरुता होने से योग में प्रवृत्त न होना।
अप्रवृत्तिश्चित्त-स्यविषय संप्रयोगात्मागर्द्धः	अप्रवृत्ति—चित्त की विषयों में प्रवृत्ति प्रेम मोह।
भ्रान्तिदर्शनं—विपर्यज्ञानं।	भ्रान्ति-दर्शन—विरोधी ज्ञान उलटा ज्ञान
अलब्धभूमिकत्वं—समाधि भूमे-रलाभः।	अलब्ध भूमिकत्व—समाधि भूमिका न मिलना।
अनवस्थितत्वं—यल्लब्धायां भूमौचित्तस्याप्रतिष्ठा।	अनवस्थितत्व—समाधिस्थ होने पर भी उसमें स्थिर न हो सकना।
समाधि प्रतिलम्भे हि सति तदव-स्थितं स्यादिति-एते चित्त विक्षेपा।	जब समाधि लाभ हो जाय तब उसमें स्थिति लाभ होना चाहिए—ये चित्त के विक्षेप हैं।
नव योगमला योग प्रतिपक्षा	ये नव योग के मल तथा योग के प्रतिपक्ष हैं।
योगान्तराया इत्यभिधीयन्ते।	ये योग अन्तराय विघ्न कहे जाते हैं।

इन विघ्नों के अन्य ५ साथी निम्न हैं,

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्व श्वासः प्रश्वास विक्षेप सहभुवः।

यो. पा. १ सू. ३१।

भाष्यं—दुःखमाध्यात्मिकाधिदैविक-माधिभौतिकं च येनाभिहताः प्राणिनः तदुपघाताय प्रयतन्ते तद् दुःखम्।	दुःख आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक हैं। जिनसे कष्ट पाये हुये प्राणी उनके विनाश का यत्न करते हैं वे दुखते हैं।
दौर्मनस्यं इच्छाविघात चेतसो क्षोभः।	दौर्मनस्य नाम इच्छा के विघात से होता है जो कि क्षोभ कहाता है।
यदगान्मेजयति तदंगमेजयत्वम्।	जो अंगों को कंपित करना है वह

प्राणो यद् बाह्यं वायु-	अंगमे जयत्व है।
	प्राण जो बाहर के वायु का ग्रहण
माचामति स श्वासः।	करता है, वह श्वास है।
यद् कौष्ठ्यं वायुं निःसारयति	जो भीतर के वायु को बाहर
सः प्रश्वासः।	निकालना है वह प्रश्वास।
एते विक्षेप सहभुवः।	ये विक्षेपों के साथी हैं।
विक्षिप्त चित्तस्यैते भवन्ति।	ये विक्षिप्त चित्त के होते हैं।
समाहितचित्तस्यैते न भवन्ति।	एकाग्रचित्त के नहीं होते।
एते विक्षेपा समाधि प्रतिपक्षा।	ये विक्षेप समाधि के विरोधी हैं।
ते अभ्यास वैराग्यभ्यां	इन्हें अभ्यास और वैराग्य कर के
निरोद्धव्या।	निरुद्ध करना चाहिये।

विघ्न विघात की विधि

तत् प्रतिषेधार्थमेकत्वाभ्यासः। यो. पा. १ सू० ३२।

विक्षेप प्रतिषेधार्थमेकत्वावलम्बनं	विक्षेपों के विनाश के अर्थ एकत्व का
चित्तमभ्यासेत्। यस्य तु प्रत्यर्थं	अवलम्बन करे जिसके मत में मन चित्त
नियतं प्रत्ययमात्रं क्षणिकं च चित्तं	प्रत्येक अर्थ में ज्ञानमात्र एवं क्षणिक है
तस्य सर्वमेव चित्तमेकाग्रं नास्ति	उसके सर्व मन एकाग्र नहीं हो सकते
एव विक्षिप्तम्। यदि पुनरिदं	अतः एव विक्षिप्त ही है। यदि यह
सर्वतः प्रत्याहृत्यैकस्मिन्नर्थे	फिर भी सबसे हटाकर एक किसी
समाधीयते तदा भवत्येकाग्र-	विषय में समाधान एकाग्र होता है तब
मिति अतो न प्रत्यर्थं नियतम्।	तो यह एकाग्र हो गया तब
	प्रत्येक अर्थ में नियत नहीं है।
योऽपि प्रत्यय प्रवाहेण चित्तमेकाग्रं	और जो प्रत्यय के प्रवाह से चित्त को
मन्यते तस्यैकाग्रता यदि	एकाग्र मानता है यदि उसकी एकाग्रता

प्रवाह चित्तस्य धर्मः तदा एकं नास्ति प्रवाह चित्तस्य क्षणिकत्वात् अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः स सर्वः सदृश प्रत्ययप्रवाही ।	प्रवाह चित्त का धर्म है तो एक नहीं है क्योंकि प्रवाह चित्त एक नहीं है क्योंकि प्रवाह चित्त क्षणिक है और यदि प्रवाह के अंश चित्त का ही (ज्ञान का) धर्म है तो वह सब समान प्रत्यय का प्रवाह है इत्यादि ।

विशेष - इत्यादि सूत्रार्थ के विपरीत भाष्य है जो कि असंगत ही है । इसी कारण भाष्य नहीं लिखा आगे ।

चित्त की एकाग्रता का तीसरा उपाय

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम् । यो. पा. १ सू. ३३ ।

तत्र सर्व प्राणिषु सुख संभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत् ।	वहाँ सर्व प्राणियों में जो कि सुख एवं संभोग प्राप्त हैं उनमें सदा मित्रता करे
दुःखितेषु करुणां ।	तथा दुःखी प्राणियों में सदा करुणा करे
पुण्यात्मकेषु मुदितां ।	और पुण्यात्मा जनों में सदा प्रसन्नता धारण करे ।
अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्	तथा अपुण्यात्मा जनों से सदा उदासीन रहे ।
एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्मः उपजायते	इस प्रकार भावना करते रहने पर इसको शुक्ल शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है ।
ततश्च चित्तं प्रसीदति ।	उसके पश्चात् चित्त प्रसन्न होता है
प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते ।	और प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थिर होता है अर्थात् स्थिरता प्राप्त करता है।

चित्त की एकाग्रता का चौथा उपाय

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य । यो. पा. १ सू. ३४ ।

कोष्ठस्य वायोर्नासिका	भीतर के वायु को नासिका के

पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषाद्	दोनों छिद्रों से प्रयत्नपूर्वक
वमनं प्रच्छर्दनम् ।	बाहर निकालना प्रच्छर्दन है और
विधारणम् प्राणायाम:	नासिका के दोनों छिद्रों से भीतर लेना
ताभ्यां वा मनस: स्थितिं	विधारण है इस प्रकार क्रिया करना प्राणायाम है।
संपादयेत् ।	इससे मन की स्थिरता स्थिति-संपादन करे, वस में करे।

महर्षिभाष्यम्

छर्दनं भक्षितान्न वमनवत्	जैसे वमन होके अन्न जल बाहर निकल
प्रयत्नेन शरीरस्थं प्राणं	जाता है एवं प्रयत्न से शरीरस्थ वायु
बाह्य देशं निस्सार्य	को बाहर निकाल कर जितना
यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भ-	सामर्थ्य हो उतने समय तक बाहर
नेन चित्तस्य स्थिरता	रोककर चित्त की स्थिरता करे।
सम्पादनीया ।	अर्थात् श्वास को बाहर भीतर रोके तो मन स्ववश होता है।

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः ।

यो. पा. २ सू. २८ ।

एषामुपासनायोगांगानाम्	इन उपासना योगांगों के
अनुष्ठानाचरणादशुद्धिर-	अनुष्ठान आचरण से अशुद्धि
ज्ञानं प्रतिदिनं क्षीणं भवति	अज्ञान का प्रतिदिन नाश होता है
ज्ञानस्य च वृद्धिर्यावन्मोक्ष-	तथा ज्ञान की वृद्धि होती है जब तक
प्राप्ति भवति ।	मोक्ष प्राप्ति हो तब तक।

॥ अथ अष्टांग योग ॥

यम नियमासन प्राणायाम,प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टांगानि ।

यो. पा. २ सू. २९ ।

अर्थ—१. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार ६. धारणा

७. ध्यान ८. समाधि ये योग के आठ अंग हैं जो इनका सेवन करता है वही योगी है।

तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। यो. पा. २ सू. ३०।

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूताना-मनभिद्रोहः। उत्तरे च यमनियमाः तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतया तत् प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते।

सर्वदा सदा सर्व सब प्राणियों के साथ वैर के त्याग का नाम अहिंसा है। आगे के यम नियम तो अहिंसा मूलक हैं। उसकी सिद्धि होने पर सिद्ध होते हैं। अतः अहिंसा की सिद्धि के

तदवदातरूप करणा यैं वो पा दीयन्ते तथा चोक्तम्—स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि वहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसा निदानेभ्यो निवर्त्तमानस्तामेवा-वदातरूपामहिंसां करोति।

शुद्ध रूप करने के लिए ही ग्रहण किए हैं और कहा भी है—वह ब्रह्म का उपासक ब्राह्मण जैसे २ बहुत से व्रत करता है वैसे-वैसे प्रमादकृत हिंसा के कारणों से पृथक् होता हुआ उस अहिंसा को ही विशुद्ध रूप करता है।

सत्यं—यथार्थे वाङ्मनसे यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति परत्र स्वबोध सङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्ति वन्ध्या वा भवेत् इति। एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय।

यथार्थ वाणी एवं मन का नाम सत्य है अर्थात् जैसा देखा वा अनुमान किया वा जैसा सुना हो एवमेव वाणी तथा मन में हो। अन्य में अपने ज्ञान को प्रविष्ट करने के अर्थ वाणी कही हो यदि वह मिथ्या, भ्रान्त तथा ज्ञान शून्य न हो तब वह वाणी सर्व प्राणियों के कल्याणार्थ है किसी प्राणी के विनाशार्थ नहीं है।

यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्

और यदि ऐसी कथन की गयी भी है परन्तु भूतों के विनाशार्थ कथन की

पापमेव भवेत्, तेन पुण्याभ्यासेन पुण्य	गई है वह सत्य नहीं है पाप ही है। उस पुण्याभ्यास पुण्य के स्वरूप पुण्य
प्रतिरूपकेण कष्टंतमः प्राप्नुयात्।	सदृश से अति कष्ट प्राप्त होता है
तस्मात् परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्।	इसलिए परीक्षा करके सर्वहित सत्य भाषण करे असत्य कभी न बोले।
स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्	विधि विरुद्ध परद्रव्य को स्वीकार करना स्तेय है अर्थात् छल कपट बलात् परधन लेना चोरी है।
तत् प्रतिषेधः पुनरस्पृहा-रूपमस्तेयम् इति।	उसके विरुद्ध कर्म, त्याग का नाम चोरी त्याग अस्तेय है।
ब्रह्मचर्यं—गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य-संयमः।	ब्रह्मचर्य—मूत्रेन्द्रिय को स्ववश करने के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है।
विषयाणामर्जनरक्षणक्षय संग हिंसा दोष दर्शनादस्वीकरण-मपरिग्रहः इति। एते यमाः।	विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय एवं संगम में विषयासक्त हिंसा आदि दोष देख कर विषयासक्त न होना अपरिग्रह है तथा दुराग्रह न करना भी अपरिग्रह है।

नियमों के भेद तथा स्वरूप

शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

यो. पा. २ सू. ३२।

ऋषि भाष्यं—शौचं बाह्याभ्यन्तरं च। बाह्य जलादिनाभ्यन्तरं राग द्वेषासत्यादि त्यागेन च कार्यं।	शौच—शुद्धि बाहर भीतर के भेद से दो प्रकार की है। बाहर की शुद्धि जलवायु आदि से और भीतर की शुद्धि राग द्वेष असत्यादि त्याग से करे।
संतोषो धर्मानुष्ठानेन सम्यक् प्रसन्नता सम्पादनीया।	संतोष—धर्मानुष्ठान से निरन्तर प्रसन्नता सम्पादन करे।
तपः—सदैव धर्मानुष्ठानमेव	तपः—सदा धर्मानुष्ठान ही

कर्त्तव्यम् ।	किया करे ।
स्वाध्याय: —वेदादि सत्यशास्त्राणा-मध्ययनाध्यापनम् ।	स्वाध्याय नाम वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना है ।
प्रणव जपो वा ईश्वर प्रणिधानं परम गुरवे परमेश्वराय सर्वात्मादि द्रव्यसमर्पणम् ।	ईश्वर प्राणिधान नाम प्रणव का जपवा परम गुरु परमेश्वर को आत्मादि सर्वस्व समर्पण का है ।
इत्युपासनाया पञ्च नियमा द्वितीयमंगम् ।	ये उपासना के ५ नियम हैं इन्हें सदा किया करे ।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: । यो. पा. २ सू. ३४ ।

अर्थ—जब उपासक मन वचन कर्म से सर्वथा अहिंसक हो जाता है तब उसके समीप आकर अन्य भी वैर त्याग देते हैं । यह सामान्य है । परन्तु काम क्रोध लोभवश वैर त्याग नहीं भी करते ।

अथ सत्याचरणस्य फलम् । अब सत्याचरण का फल कथन करते हैं ।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् । यो. पा. २ सू० ३५ ।

अर्थ—जब मनुष्य सत्याचरण में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है—अर्थात् जब उपासक मन वचन कर्म से सत्याचरण ही करता है तब उपासक को क्रिया फल नाम सर्व सत्य कार्यों में सफलता प्राप्त होती है ।

अथ चोरी त्याग फलम्—अब चोरी त्याग का फल वर्णन करते हैं ।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् । यो. पा. १ सू. ३६ ।

अर्थ—जब उपासक मन वचन कर्म से चोरी को त्याग देता है तब उसे सर्व रत्न प्राप्त होते हैं अर्थात् उपासक को द्रव्याभाव दु:खद नहीं होता । सर्व आवश्यक द्रव्य प्राप्त होते हैं ।

अथ ब्रह्मचर्याश्रमानुष्ठानेन यल्लभ्यते तदुच्यते—	अब ब्रह्मचर्य पालन से जो प्राप्त होता है उस का फल विधान करते हैं ।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ: । यो. पा. २ सू. ३७ ।

अर्थ—जब योगी मन वचन कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तब योगी को वीर्य सामर्थ्य प्राप्त होता है

अथापरिग्रह फलमुच्यते—अब अपरिग्रह का फल विधान करते हैं।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथन्ता सम्बोधः। यो. पा. २ सू.३८।

अर्थ—जब मानव विषय वासना एवं विषय के साधनों का त्याग कर देता है तब उसे जन्म कथन्ता नाम—मैं क्या हूं कहाँ से आया तथा क्यों आया मेरा क्या कर्तव्य है इस जन्म के उपरान्त मैं कहाँ जाऊंगा ये सम्बन्धी कहाँ होंगे इस जन्म से पूर्व भी मैं कहाँ था ये कहां थे इस जन्म की माता भ्राता आदि क्या थे और आगे भी कहाँ और क्या होंगे इत्यादि विचार उत्पन्न होते हैं। यदि मैंने परमेश्वर का सहारा न लिया तो यस्य मृत्यु :—मैं जन्म जन्मान्तरों तक जीवन मृत्यु के चक्र में पड़ा रहूंगा किस प्रकार जन्म जरा के जटिल जंजाल से मुक्त हो सकूंगा यह समय मुझे किस प्रकार मिला था मानव जन्म दुर्लभ है इसकी एक अंगुली भी संसार में किसीं मूल्य पर नहीं मिलती यह देह परमेश्वर मुझे क्यों देगा मैंने जगत में जन्म पाकर क्या कार्य किए हैं जो परमात्मा मुझे इस संसार में क्यों भेजेगा और यदि मानव भी न बना जंगली जीवों में जलचर भूचर नभचर वायवी जीवों में जन्म हो गया तब मेरा क्या होगा क्या कभी पुनरपि यह समय मिलेगा। हा हन्त मैंने यह जन्म क्यों बिता दिया। संसार के सर्व प्राणी मृत्यु के मुख में हैं इससे कौन बचाएगा। राजा से रंक कीड़ी से हाथी तक सब मृत्यु के मुख में हैं।

अथ शौचानुष्ठानम्— अब शौच नाम पवित्रता का विधान करते हैं

शौचात् स्वांग जुगुप्सापरैरसंसर्गः। यो. पा. २ सू. ३३।

अर्थ—सदापवित्र रहने पर भी अपना शरीर अपवित्र हो जाता है। इससे उपासक को अपने शरीर में घृणा भी होती है कि मैं स्वशरीर को सदा पवित्र रखता हूं यह फिर भी अपवित्र रहता है और जो स्वशरीर को पवित्र नहीं रखते उनका क्या कथन है। अतः उपासक स्वदेह को परदेह से सदा दूर रखता

है किञ्च—शौच का अन्य फल भी कथन करते हैं।

सत्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शन योग्यत्वानि च।

यो. पा. २ सू. ३४।

अर्थ—सत्व नाम आत्मा की शुद्धि तथा मन की स्वच्छता एकाग्रता एवं इन्द्रियों की विजय तथा परमात्मा के दर्शन की योग्यता आभ्यन्तर की शुद्धि से होती है।

संतोष का फल—

संतोषादनुत्तम सुखः लाभः। यो. पा. २ सू. ३५।

अर्थ—संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है। संतोष ही जीवन मुक्ति तथा समाधि का सुख है। क्योंकि संतोषी सदा सुखी है चाहे वह काँटों की बाड़ में बैठा रहे। जब संतोष होगा तब मन कहाँ जायेगा। असंतुष्ट व्यक्ति का मन सदा भागता रहता है। संतुष्ट मन कहां जाएगा वह तो सदा स्ववश रहता है।

तप का फल—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात् तपसः। यो. पा. २ सू. ३६।

अर्थ—तप से काया और इन्द्रियों की सिद्धि सम्पन्नता होती है। क्योंकि तप से अशुद्धि का नाश होता है।

स्वाध्याय का फल

स्वाध्यायदिष्ट देवता संप्रयोगः। यो. पा. २ सू. ३७।

अर्थ—स्वाध्याय-वेदादिका अध्ययन—स्वः—अपना अध्ययन चिन्तन तथा स्वः परमेश्वर का अध्ययन जप तथा विचार आदि करने से इष्टदेव जो परमेश्वर है उसका संप्रयोग नाम मेल होता है।

ईश्वर प्रणिधान का फल

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्। यो. पा. २ सू- ३८।

अर्थ—ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है अर्थात् सर्व गुरु परमेश्वर के प्रति स्वात्म समर्पण करने से समाधि सिद्धि होती है क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी

की आज्ञा के विना कुछ नहीं करता एवमेव उपासक परमेश्वर के आदेश की प्रतीक्षा करता है। स्वकल्पना से कार्य नहीं करता। तब ईश्वर उसे समाधि समाधान एकाग्रता स्वदर्शन प्रदान करता है उस समाधि से ब्रह्मदर्शन होता है क्योंकि जीव ब्रह्म एक स्थान में ही वास करते हैं।

तत्र स्थिरं सुखासनम्। यो. पा. सू. ४६।

अर्थ---पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिक, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यंक, क्रौञ्चनिषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन, सम संस्थान, स्थिर सुख इत्यादि आसन करे। अथवा जैसी इच्छा हो वैसा आसन करे।

आसन का फल---

ततो द्वन्द्वानभिघातः। यो. पा. २ सू. ४८।

शीतोष्णदिभिर्द्वन्द्वै --- रासन जयान्नाभिभूयते	जब योगी का आसन सिद्ध हो जाता है तब शीत उष्ण आदि द्वन्द्व दुःखों से योगी अभिभूत पीड़ा नहीं पाता।

प्राणायाम का लक्षण

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः। २/४९

यत् सत्यासन जये बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः---	आसन के सिद्ध होने पर बाहर के वायु को भीतर ग्रहण करनें का नाम श्वास है।
कोष्ठस्य वायोर्निस्सारणं प्रश्वासः तयोर्गति विच्छेदः उभयाभावः प्राणाय्यामः।	भीतर के वायु को बाहर निकालना प्रश्वास है। उन दोनों श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

महर्षि भा०

आसने सम्यक् सिद्धे कृते बाह्याभ्यन्तर गमनशीलस्य	जब आसन अच्छे प्रकार सिद्ध हो जाय तब बाहर भीतर गमनशील वायु को

वायोर्युक्तया शनै-शनैरभ्यासेन जयकरणमर्थात् स्थिरीकृत्य गत्याभावकरणं प्राणायामः ।

युक्ति से शनै २ अभ्यास करके स्ववश करे अर्थात् बाहर भीतर प्राण की गति को रोक कर जहाँ चाहे वहाँ रोकना ही प्राणायाम है ।

प्राणायाम को बढ़ाने का प्रकार

भवति बाह्याभ्यान्तर स्तम्भवृत्तिर्देश काल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः । २।५० ।

यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्याभावः स बाह्यः ।

जिसमें प्रश्वासपूर्वक गति का अभाव होता है । बाहर निकाल कर बाहर रोकना वह बाह्यवृत्ति प्रणायाम होता है ।

यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः ।

जिसमें श्वास पूर्वक गति का अभाव होता है भीतर लेकर भीतर रोके वह आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम है ।

तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः सकृत् प्रयत्नात् भवति यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते तथा द्वयोर्युगपत् गत्यभाव इति ।

और तीसरा स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है जिसमें बाहर भीतर एक साथ श्वास रोकते हैं जैसे संतप्त तवे पर पानी की बूंदे चारों ओर से जल कर संकुचित हो जाती एवमेव श्वास बाहर भीतर दोनों ओर रुकता है इसे स्तम्भवृत्ति जाने ।

प्राणायाम के ४ भेद—

अर्थात् (१) श्वास को बाहर निकाल कर पुनः २ बाहर ही रोके यह बाह्यवृत्ति ।

(२) श्वास को भीतर लेकर पुनः २ भीतर ही रोके यह आभ्यन्तर वृत्ति है ।

(३) श्वास को जहां का तहां रोके न बाहर ले न भीतर ले। अकस्मात् रोक दे यह स्तम्भवृत्ति है।

(४) बाहर निकाल कर बाहर रोके एवं भीतर लेकर भीतर ही रोके यह बाह्याभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम हैं।

वालवुद्धिभिरंगुल्यंगुष्ठाभ्यां नासिका छिद्रमवरुध्य य: प्राणायाम: क्रियते स खलु शिष्टैस्त्याज्य एवास्ति

जो बालबुद्धि जन अंगुलि और अंगूठे से नासिका के छिद्रों को रोककर जो प्राणायाम करते हैं वह श्रेष्ठों को त्याज्य ही है।

किन्त्वत्र वाह्याभ्यन्तरांगेषु यथावत् स्थितेषु शांति शैथिल्ये संपाद्य सर्वांगेषु बाह्य देशं गतं प्राणं तत्रैव यथाशक्ति संरुद्ध प्रथमो बाह्याख्य: प्राणायाम: कर्त्तव्य:। तथोपासकैर्योबाह्या-द्देशादन्त: प्रविशति तस्याभ्यन्तर एव यथाशक्ति निरोध: क्रियते स आभ्यन्तरो द्वितीय: सेवनीय:।

शांति एवं शिथिलता करके सर्वांगों के यथावत् स्थित हो जाने पर बाह्य देश में गए हुए प्राण को वहीं यथाशक्ति रोक कर प्रथमप्राणायाम करना चाहिए तथा उपासकों द्वारा को जो बाहर से भीतर आता है उसका भीतर ही यथाशक्ति निरोध किया जाता है वह आभ्यन्तरवृत्ति दूसरा सेवनीय है।

एवं बाह्याभ्यन्तराभ्यामनुष्ठिताभ्यां कदाचिदुभयोर्युगपत संरोधो य: क्रियते स: स्तम्भवृत्ति तृतीय: प्राणायोमाऽभ्यसनीय:

इसी प्रकार बाहर भीतर दोनों ओर जहां का तहां जो प्राण रोका जाता है अर्थात् दोनों स्थान में प्राण की गति का निरोध होता है वह बाह्याभ्यन्तर-वृत्ति प्राणायाम है।

अर्थात् बाहर भीतर जहां का तहां प्राण के निरोध का नाम स्तम्भ-वृत्ति है।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थ:। यो॰ पा॰ २ सू॰ ५१।

य: प्राणयाम उभयाक्षेपी स चतुर्थो गद्यते। तद्यथा यदोदरात्

जो प्राणायाम बाहर भीतर दोनों ओर रोका जाता है वह चतुर्थ कहाता है।

बाह्यदेशं प्रतिगन्तुं प्रथम क्षण प्रवर्त्तते तं संलक्ष्य पुनः बाह्य	जैसे—जब उदर से बाहर श्वास निकले तब उसे लक्ष्य करके पुनः २ बाहर ही रोके, बाहर ही
देशं प्रत्येव प्राणः प्रक्षेप्तव्यः पुनश्च यथा बाह्यादेशादाभ्यन्तरं प्रथममागच्छेत् तमाभ्यन्तर एव	फेंकता जाए जब रोके तब बाहर ही रोके और पुनः जब बाहर से भीतर आयें तब उसे पुनः २ भीतर ही रोके बाहर न जाने दे।
पुनः २ यथा शक्ति गृहीत्वा तत्रैव स्तम्भयेत्।	इस प्रकार यथाशक्ति प्राण को लेकर पुनःपुनः करता जाए अर्थात् रोकता रहे
एतयोः क्रमेणाभ्यासेन गत्यभावः क्रियते स चतुर्थः प्राणायामः। यस्तु खलु तृतीयो अस्ति स नैव बाह्याभ्यन्तरस्यापेक्षां करोति किन्तु यत्र २ देशे प्राणो वर्त्तते तत्र तत्रैव सकृत् स्तम्भनीयः। यथा किञ्चिदद्भुतं दृष्ट्वा मनुष्यश्चकितो भवतिस्तथैव कार्यम्।	इस प्रकार बाहर भीतर क्रम से रोक कर प्राण को स्ववश करे। यह चतुर्थ प्राणायाम है और जो तृतीय प्राणायाम है वह बाहर भीतर की अपेक्षा नहीं करता किन्तु जहाँ २ प्राण होता है बाहर तथा भीतर वहीं का वहीं एक बार ही रोक देना चाहिए। जैसे आश्चर्य-जनक वस्तु को देखकर मनुष्य चकित हो जाता है एवमेव एक बार ही श्वास को बाहर का बाहर और भीतर का भीतर रोक दे न बाहर ले न भीतर ले।

प्राणायाम का फल

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। यो० पा० २ सू० ५२।

एवं प्राणायामाभ्यासाद् यत् परमेश्वरस्यान्तर्यामिनः	इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से अन्तर्यामी परमेश्वर के प्रकाश में

प्रकाश सत्यविवेकस्या- वरणाख्यमज्ञानमस्ति तत् क्षीयते क्षयं प्राप्नोति-इति	सत्य-विवेक का जो आवरण-पर्दा अज्ञान नामक अविवेक है वह प्राणा-याम करके क्षीण निर्बल होकर नष्ट हो जाता है यह सत्य है।

प्राणायाम से धारणा के योग्य मन हो जाता है

धारणासु च योग्यता मनसः। यो० पा० २ सू० ५३।

प्राणायामाभ्यासादेव	प्राणायाम के अभ्यास से ही जैसा कि यो० पा० १ सू० ३४
प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्येति वचनात् प्राणायामानुष्टानेनोपासकानां मनसो ब्रह्मध्यानयोग्यता भवति	प्रच्छर्दन-सूत्र में कथन किया है उसी प्रकार बाहर भीतर रोकने से प्राणायाम के पुनः २ अभ्यास करने से उपासकों के मन की ब्रह्म ध्यान में योग्यता होती है। ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान होता है।
अथ कः प्रत्याहारः—	प्रत्याहार और उससे क्या लाभ है यह कथन करते हैं।

स्वविषयसम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।
यो० पा० २ सू० ५४।

यदा चित्तं जितं भवति परमेश्वर स्मरणालम्बनात्	जब चित्त विजित स्ववश हो जाता है तब परमेश्वर का स्मरण करने से ब्रह्मस्थ ब्रह्मध्यान की योग्यता होती है
विषयान्तरे नैव गच्छति तदेन्द्रियाणां- प्रत्याहारोऽर्थान्निरोधो भवति। कस्य केषांमिव यथा चित्तं परमेश्वर स्वरूपस्थं भवति तथैवेन्द्रियाण्यपि जिते सर्वमिन्द्रियादिकं जितं भवतीति विज्ञेय—	अन्य विषयों में नहीं जाता तब इन्द्रियों का प्रत्याहार नाम निरोध होता है— किसका किसके समान ? जैसे चित्त परमेश्वर के चेतन स्वरूप में होता है एवं इन्द्रियां भीस्ववश होती हैं।

अर्थात् जब चित्त चेतना इच्छा स्ववश होती है तब इन्द्रियां भी स्ववश होती हैं।

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्। योo पाo २ सूo ५५।

ततस्तदन्तरं स्वस्व विषया-संप्रयोगेऽर्थात्—स्वस्वविषया न्निवृत्तौ सत्यामिन्द्रियाणां परमावश्यता यथावद् विजयो जायते। स उपासको यदा यदेश्वरो-पासनां कर्त्तुं प्रवर्त्तते तदा तदैव चित्तस्येन्द्रियाणां च वश्यत्वं कर्त्तुं शक्नोति।

उस समय जब मन एवं इन्द्रियां स्ववश होते हैं विषयों के साथ संयोग न होने पर स्वविषयों से निवृत्ति होने पर इन्द्रियों की परमवश्यता होती है यथावत् विजय हो जाती है तब वह उपासक जब-जब ईश्वर की उपासना करने में प्रवृत्त होता है उसी समय चित्त और इन्द्रियों की स्ववशता करने में समर्थ होता है।

अर्थात् इन्द्रिय एवं चित्त में चचलता नहीं रहती।

भावार्थ—जब इन्द्रियां स्वविषय में युक्त होती हैं तब वे स्वविषय कुशल हो जाती हैं और यदि वे स्वविषय से सयुक्त न हों तब वे चित्त के अनुकूल चलती हैं अर्थात् इन्द्रियों का विजय चित्त की विजय है। वस्तुतः उभय इन्द्रियों का चित्त चेतन ही राजा है जैसे राजा की आज्ञा में प्रजा चलती है एवं इन्द्रियां आत्मा नाम चित्त चेतन की आज्ञा में उभयविध जड़-चेतन की शक्ति चलती है। अतः चित्त के अनुरूप इन्द्रियों का होना ही प्रत्याहार है।

धारणा का लक्षण

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। योo पाo ३ सूत्र १।

नाभिचक्र,हृदय कमल,मूर्च्छादी ज्योति,नासिका, अग्रजिह्व आदि स्थानों में अथवा वाह्य विषयों में चित्त की वृत्ति—ज्ञान-इच्छा शक्ति का बांधना स्थिर करना जैसे भूखे को भोजन के अतिरिक्त कुछ भी प्रिय प्रतीत न हो एव मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा करके परमेश्वर का सदा स्मरण करे यही धारणा है।

ध्यान का लक्षण

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । यो० पा० ३ सूत्र० २ ।

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनेस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेण परामृष्टो ध्यानम्	उसी देश में जहां धारणा की हो उसी ध्येय में प्रत्यय इच्छा-ज्ञान स्थिर रहे अन्य कुछ भी स्मरण न आये उस स्थान को जानने की अभिलाषा लगी रहे अन्यत्र मन न जाये यही ध्यान है।

अर्थात् जिस देश शरीर के अंग में धारणा की हो उसी स्थान में ध्येय में आश्रित जो प्रत्यय-इच्छा शक्ति एवं बुद्धि स्थिर बनी नहीं रहें अन्य वृत्ति-स्मृति एवं इच्छा न आने पाये केवल उसी ध्येय के साक्षात्कार की अभिलाषा लगी रहे जब तक ध्येय का ज्ञान न हो यही ध्यान है। ध्यान शब्द ध्यै धातु से सम्पन्न होता है जिसका अर्थ चिन्तन पुनः-पुनः मनन होता है क्योंकि ध्यान में ध्याता, ध्यानकर्त्ता। ध्यान-मनोवृत्ति जिसे जानना चाहे तो वह बुद्धि वृत्ति इच्छा शक्ति—ध्येय जिसे जानने की अभिलाषा है ये तीनों प्रतीत होते हैं।

॥ समाधि का लक्षण ॥

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। यो० पा० ३ सू० ३ ।

ऋषिभाष्य—ध्यान समाध्योरयं भेदः ध्याने मनसो ध्यातृ-ध्यान-ध्येयाकारेण विद्यमाना वृत्तिर्भवति समाधौ तु परमेश्वर स्वरूपे तदानन्दे च मग्न स्वस्वरूप शून्यमिव भवति ।	ध्यान और समाधि में यह भेद है कि ध्यान में मन को ध्यातृ-ध्येय एवं ध्यानाकार-रूप से वृत्ति वर्त्तमान रहती है तथा समाधि में तो परमेश्वर के स्वरूप में एवं ब्रह्मानन्द में मग्न और स्वस्वरूप से शून्य जैसी अवस्था होती है।

भावार्थ—ध्यान समय मनोवृत्ति में ध्याता ध्यान एवं ध्येय तीनों पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं और समाधि दशा में आत्मा परमात्मा एवं उसके आनन्द में मग्न होता है तथा उसे समाधि दशा में स्वस्वरूप का भान भी नहीं रहता। वह स्वरूप का भान करे तो ब्रह्मानन्द का भान कौन करे। आत्मा

परमात्मा के आनन्द एवं ज्ञान में मग्न होता है परन्तु आत्मा का अभाव अथवा ब्रह्म में विलीन नहीं होता। यदि आत्मा का अभाव अथवा ब्रह्म में मिल जाय तो ब्रह्मानन्द और ब्रह्मस्वरूप का चिन्तन एवं ज्ञान कौन करे तथा जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होते क्योंकि एक में ध्याता ध्यान ध्येय कभी नहीं होते। यह सूत्र ब्रह्म समाधि का लक्षण है परन्तु जब जीव स्वरूप का अनुभव करता है तब जीव समाधि होती है।

संयम का लक्षण

ऋषिभाष्यम्—त्रयमेकत्र संयमः। यो० पा० ३ सू० ४।

तदेतद्धारणाध्यान समाधि त्रयमेकत्रसंयमः	जो ये धारणा ध्यान समाधि तीनों हैं वे संयम कथन किये जाते हैं।
एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते।	जब ये तीनों एक विषय होते हैं तब इनको संयम कथन कर लेते हैं।
तदस्य त्रयस्य तांत्रिकी परिभाषा संयम इति	यह संयम शब्द योग शास्त्र का कथन है। योग ने संयम शब्द का प्रयोग किया है।
संयमश्चोपासनाया नवमांगम्।	यह संयम उपासना का नवम अंग है।

भावार्थ—जब उपासक की पृथक्-पृथक् रूप से प्रथम धारणा पश्चात् ध्यान तदन्तर समाधि हो तब ये नाम धारणा ध्यान समाधि होते हैं किन्तु जब इन तीनों में क्रम से समय नहीं लगता अपितु एक साथ—हठात् समाधि होती है उपासक जब जहाँ चाहे तभी एक विषय में मन का समाधान हो जाये तब संयम होता है और जिस उपासक की ऐसी दशा होती है वही संयमी होता है जब तक उपासक क्रम से धारणा ध्यान समाधि करता है तब तक उसको संयमी नहीं कहते। संयमी अवस्था उपासक को पर वैराग्य एवं ईश्वर प्रणिधान से प्राप्त होती है। इस संयम की अवस्था को ही जीवनमुक्ति असंग तथा विदेह कहते हैं।

नाविरतोदुश्चरितात्	जो दुराचार से दूर नहीं है

नाशान्तः नासमाहितः । — जिसका आत्मा शान्त नहीं है जो योगी नहीं समाहित नहीं होता और

नाशान्त मानसो वापि — जिसका मन शान्त नहीं है वह

प्रज्ञानेन एनं आप्नुयात् — पढ़े वा सुने हुए ज्ञान से भी इस परमेश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता ।

(कठोपनिषद्—वल्ली २ श्लोक २४)

तपः श्रद्धे येह्यु पवसन्ति अरण्ये — जो जन प्रेम से धर्माचरण एवं परमेश्वर की आज्ञा में निवास करते हैं वे अरण्य हृदयरूपी वन में परमेश्वर के निकट वास करते हैं

शान्ता विद्वांसः भैक्ष्यचर्यं चरन्तः — तथा शान्त एवं विद्वान् जन भिक्षाचरण करके चाहे वे किसी भी आश्रम में वास

सूर्यद्वारेण ते विरजाः — करते हैं सूर्य प्राण मार्ग से परमेश्वर में प्रवेश करके विरजा सर्वदोषों से दूर होकर

प्रयान्ति यत्रामृतः — परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।

स पुरुषोह्यव्ययात्मा । — जहाँ वह पूर्ण पुरुष परमात्मा अतिसूक्ष्म वास

मुण्डक उपनिषद् — करता है उस हानि लाभ शून्य परमेश्वर को

खं० २ मं० ११ । — प्राप्त होकर सदा नन्द में रहते हैं ।

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्य तमिति ॥

जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें उस समय इस रीति से करें कि—(अथ यदिद०) कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उसके बीच में जो गर्त है उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश रूप एक स्थान है और उसके बीच में जो सर्व-

शक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है वह आनन्द रूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥

और कदाचित् कोई पूछे कि—(तं चेद्ब्रूयु) अर्थात् उस हृदयाकाश में क्या रखा है जिसकी खोज की जाय।

स ब्रूयाद्यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते। उभावग्निश्च वायुश्च सूर्य्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तस्मिन् समाहितमिति।

तो उसका उत्तर यह है कि—(स ब्रूयाद्या) हृदय देश में जितना आकाश है वह सब अन्तर्यामी परमेश्वर ही से भर रहा है और उसी हृदयाकाश के बीच में सूर्य्य आदि प्रकाश तथा पृथिवी लोक, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजली और सब नक्षत्र लोक भी ठहर रहे हैं जितने दीखने वाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं।

तं चेद्ब्रूयुरस्मिंश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वं समाहितं सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरावाप्नोति प्रध्वंसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति।

(तं चेद्ब्रूयु०) इसमें कोई ऐसी शंका करे कि जिस ब्रह्मपुर हृदयाकाश में सब भूत और काम स्थिर होते हैं उस हृदय देश के वृद्धावस्था के उपरांत नाश हो जाने पर उसके बीच में क्या बाकी रह जाता है कि जिसको तुम खोजने को कहते हो।

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत् सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन् कामाः समाहिता एष आत्म अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपास सत्य काम सत्य संकल्पो यथाह्ये वेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्त मयि कामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रमागतं तमेवोपजीवन्ति ॥ छान्दोग्योपनि० प्रपा० ८। १, २, ३, ४, ५ ॥

तो इसका उत्तर यह है (स ब्रूयात्०) सुनो भाई उस ब्रह्मपुर में जा परिपूर्ण परमेश्वर है उसको न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिसमें सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं। वह (अपहतपाप्मा) अर्थात् सब पापों से रहित शुद्ध स्वभाव (विरजः) जरा अवस्था रहित (विशोकः) शोक रहित (विजिघत्सोऽपि०) जो खाने पीने की इच्छा कभी नहीं करता (सत्य कामः) जिसके सब काम सत्य हैं (सत्य संकल्पः) जिसके सब संकल्प भी सत्य हैं उसी आकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा प्रवेश कर जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाशित होती है। इस पूर्वोक्त उपासना से उपासक लोग जिस जिस काम की, जिस २ देश की, क्षेत्र भाग अर्थात् अवकाश की इच्छा करते हैं उन सब को यथावत् प्राप्त होते हैं।

॥ ब्रह्मपुर ॥

छान्दोग्य उपनिषद् के प्र० ८ खं १ मं०१ में जो ब्रह्मपुर का वर्णन आया है वह इस ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के भाष्यकार पंडितों ने हृदय माना है जो कि छाती में मांस का थैला है जिसमें सदा रक्त आता जाता है किन्तु इन मंत्रों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि वह हृदय यह नहीं है—यथा - दहरं पुण्डरीकं वेश्म-८-१-१-अर्थात् दहर-गहरा-पुण्डरीक कमलाकार-वेश्म स्थान गृह है। उसमें ब्रह्म को अन्वेषण करना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि यह हृदय जिस में रक्त सारे शरीर से शुद्ध होने के लिए आता है और शुद्ध होकर पुनः सारे शरीर में जाता है इसके चार भाग हैं। इसमें कमल के आकार का कोई स्थान नहीं यह तो मानव मुष्टि के समान रक्त का केन्द्र है। ब्रह्म तो सर्वत्र है परन्तु उसकी प्राप्ति वहां होगी जहां जीवात्मा का वास है। और जीव वास मूर्धा के नीचे ब्रह्मरंध्र में है। पढ़ो अथर्ववेद कां० १० सू. २ म. २६ मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत पवमानोऽधिशीर्षतः।

अर्थ—अथर्वा-अहिंसक पवमानः पवित्रकर्ता परमेश्वर ने अस्य-इस पुरुष के मूर्द्धानम्-मूर्द्धास्थान को संसीव्यसींकर-बनाकर च और-यत् जो हृदयम् हृदय को जो कि मस्तिष्कात् माथे से ऊर्ध्वा ऊपर है तथा शीर्षतः शिर शिखा-के नीचे जिसे तालु कहते हैं जो नवजात शिशु के शिर में स्पष्ट प्रतीत होता है इसे ही योगी दशम द्वार कहते हैं। यहीं जीव का वास है एवं इन्द्रियों के ज्ञानतन्तु यहीं गये हैं प्रैरयत परमेश्वर प्रेरणा देता है यहीं और मं. २७ तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः। तत् प्राणोऽभिरक्षति शिरो अन्न-मथो मनः। अथर्व. कां.१० सू. २ मं. २७। अथर्वा अथवा अथर्वणः अहिंसक परमेश्वर का तत् वह शिर देवकोशः देव इन्द्रियों का कोश खजाना निवास स्थान समुब्जितः संचित है। तत् उस शिर के प्राणः प्राण अभि सब प्रकार रक्षति रक्षा करता है अथ और अन्न मूअन्न जलादि तथा मनः संकल्प विकल्पात्मक जीव की रक्षति रक्षा करता है पढ़ो मं. २८ पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते। अ० कां १० सू २ मं २८।

अर्थात् जो ब्रह्मपुर को जानता है उसे ही पुरुष कहते हैं। न वैतं चक्षुर्ज-हाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते। अ. कां. १० सू०२ मं. ३०। अर्थात् जो इस ब्रह्मपुर को जानता है उसे वृद्धावस्था से पूर्व न चक्षु और न प्राण त्यागते हैं। तथा मं ३१ में बड़ा स्पष्ट वर्णन है। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः अर्थात् उसमें सुवर्णमय कोश है जो कि ज्योति से आवृत है। तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्म-विदो विदुः। अ. कां. १० सू० २ मं० ३२।

अर्थ—उसमें जो यक्ष पूज्य परमेश्वर जीवात्मा के साथ है उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं। तथा पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्। अ० कां. सू०२ मं. ३३

अर्थात्—उस देदीप्यमान पुरी में ब्रह्म प्रविष्ट है जो पुरी अजेय सर्व साधारण को अप्राप्य है।

(१) अयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत् पूर्णमप्रवर्ति ॥छा०३।१२।९ (अयम्) यह (अन्तर्हृदये) हृदय के अन्दर बीच (आकाशः) ब्रह्म है (तद्+एतत्)

वह यह ब्रह्म (पूर्णम्) सर्वत्र पूर्ण (अप्रवर्ति) परिवर्तन रहित है।

(२) एष सर्वस्येशान सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किञ्च। बृ० ५। ६। १॥

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योमन्यात्मा प्रतिष्ठितः मु० ३। ३। ७॥

(स+एषः) वह यह ब्रह्म सबों का ईश सर्वाधिपति है और जो कुछ है सबका शासन वही कर रहा है।

(दिव्ये) दिव्य ब्रह्मपुर में यह ब्रह्म स्थित है।

ब्रह्मपुर छांदोग्य उपनिषद में

(२) एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा॥ ३। १४। ३॥

(एष आत्मा) यह परमात्मा (मे) मेरे (अन्तर्हृदये) हृदय के बीच में है (व्रीहेः) व्रीहि से (यवाद्+वा) यव से (अणीयान्) अति सूक्ष्म है।

(३) स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृदयमिति तस्माद्धृदयम् छा० ८। ३।३

(स+वै) वह (एष+आत्मा) यह आत्मा (हृदि) हृदय में है (तस्य) उस हृदय का (एतत्+एव) यही (निरुक्तम्) निर्वचन=अर्थ है (हृदि+अयम्) यह ब्रह्म हृदय में है (तस्मात्) इस हेतु (हृदयम्) यह हृदय कहलाता है।

(४) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
॥ कठ ६। १७॥

(अङ्गुष्ठमात्रः) अति सूक्ष्म (अन्तरात्मा) जीवात्मा में भी व्यापक (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म (सदा) सर्वदा (जनानां+हृदये) मनुष्यों के हृदय में (सन्निविष्टः) स्थित है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। सर्वाध्यक्षः सर्व

भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। श्वेताश्वतरोप० अ० ६ मं० ११।

एको देव इत्यादि सगुणोपासनम्। निर्गुणश्चेति वचनान्निर्गुणोपासनम्। तथा सर्वज्ञादि गुणैः सह वर्तमानः सगुणः, अविद्यादि क्लेश परिमाण द्वित्वादि संख्या शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि गुणेभ्यो निर्गतत्वान्निर्गुणः। तद्यथा परमेश्वरः सर्वज्ञः सर्वव्यापी सर्वाध्यक्षः सर्वस्वामी चेत्यादि गुणैः सह वर्तमानत्वात् परमेश्वरस्य सगुणोपासनं विज्ञेयम् तथा सोऽजोऽर्थाज्जन्मरहितः, अव्रणः छेदरहितः, निराकारः आकाररहितः, अकायः शरीर सम्बन्धरहितः, तथैव रूप रस गन्धस्पर्श संख्या परिमाणदयो गुणास्तस्मिन्न सन्तीदमेव तस्य निर्गुणोपासनं ज्ञातव्यम्। अतो देहधारणेनेश्वरः सगुणो भवति देहत्यागेन निर्गुणश्चेति या मूढानां कल्पनास्ति सा वेदादि शास्त्र प्रमाण विरुद्धा विद्वदनुभव विरुद्धा चास्ति। तस्मात्सज्जनैर्व्यर्थेयं रीतिः सदा त्याज्येति-शिवम्।

भा. अस्य सर्वस्य भाषायामर्थंमभिप्रायः प्रकाशिष्यते
इस सब का भाषा में अर्थ प्रकाशित करेंगे।

सेयं तस्य परमेश्वरस्योपासना द्विविधास्ति—एका सगुणा द्वितीया निर्गुणा चेति।

तद्यथा—

उपासना दो प्रकार की है—

(१) एक सगुण और (२) दूसरी निर्गुण।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित और नहीं छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त हैं जो (कविः) सर्वत्र (मनीषी)

सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है (सः) वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनन्त शक्ति युक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सबका साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनाने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इसलिए इस ब्रह्म की सदैव उपासना करो।

भाष्यं—तथा सोऽजोऽयज्जिन्मरहितः अव्रणः छेद रहितः निराकारः आकारहितः अकायः शरीर सम्बन्धरहितः तथैव रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाणादयो गुणा तस्मिन् न सन्तीदमेव तस्य निर्गुणोपासनं ज्ञातव्यम्।

अर्थ—इसी प्रकार वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता निराकार अर्थात् शरीर कभी धारण नहीं करता, अव्रण अर्थात् उसमें छिद्र कभी नहीं होता वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धवाला कभी नहीं होता उसमें दो तीन आदि संख्या की गणना नहीं बन सकती, वह लम्बा, चौड़ा और हल्का भारी कभी नहीं होता इत्यादि गुण निवारण पूर्वक उस परमात्मा को स्मरण करने को को निर्गुण उपासना कहते हैं।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। अथर्व० का० १३ अ० ४ मं १६।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। अथर्व० १३ अ० ४ मं० १७।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। अ० का० १३ अ० ४ मं० १८।
तदिदं निगतं सहः स एक एवं एकवदेक एव। अ० का १३ मं ०४ मं० २०

सर्वेऽस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । अ० का० १३ अ० ४ मं० २१ ।

भाष्यं—एतैर्मन्त्रैरिदं विज्ञायते	इन मंत्रों से यह ज्ञात होता है कि वह
परमेश्वर एक एकएवास्ति	परमेश्वर एक ही है ।
नैवातो भिन्नः कश्चिदपि	इससे भिन्न कोई भी अन्य
द्वितीयः तृतीयः चतुर्थः	दूसरा तीसरा एवं चतुर्थ
पञ्चमः षष्ठः सप्तमो अष्टमो	पञ्चम छठा सातवां आठवां
नवमो दशमश्चेश्वरो विद्यते	नौवां और दशका ईश्वर नहीं ।
यतो नवां भनंकारै द्वित्व संख्या	जिससे नौ नकार से द्वित्व संख्या
मारम्य शून्यपर्यन्तेनैक-	से लेकर शून्य तक एक ही
मीश्वरं विधायास्माद् भिन्ने-	का विधान करके इससे पृथक् ईश्वर
	का विधान कर के भिन्न ईश्वर
श्वर भावस्याति शयतया	भाव का अत्यन्त निषेध वेदों में
निषेधो वेदेषु कृतोत्यस्त यतो	किया है । जिससे दूसरे की
द्वितीयस्योपासनमत्यन्तंनिषिध्यते	उपासना का अत्यन्त निषेध है ।

ऋषि भाष्यम्—एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा । सर्वाध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

श्वेताश्वतरो प० अ० ६ मं० ११ ।

भाष्यं—एको देव इत्यादि सगुणोपासनम् । निर्गुणश्चेति वचनान्निर्गुणोपासनम् तथा सर्वज्ञादि गुणैः सह वर्तमान सगुणः अविद्यादि क्लेश परिमाण द्वित्वादि संख्या शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि गुणेभ्यो निर्गतत्वान्निर्गुणः । तद्यथा परमेश्वरः सर्वज्ञः सर्वव्यापी सर्वाध्यक्षः सर्वस्वामी चेत्यादिगुणैः सह वर्तमानत्वात् परमेश्वरस्य सगुणोपासनं विज्ञेयम् ।

अर्थ—(एको देवः) एक देव इत्यादि मन्त्र में निर्दिष्ट गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण और (निर्गुणश्च) इस विशेषण के कहने से निर्गुण समझा जाता है । ईश्वर की सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, शुद्धता, समानता, न्यायकारिता, दयालुता, सर्वव्यापकता सर्वाधारता, मंगलमयता, सबकी उत्पत्ति

करना और सब का स्वामी होना इत्यादि सत्य गुणों से उसकी ज्ञानपूर्वक उपासना करने को सगुणोपासना कहते हैं।

भाष्यं—अतो देह धारणेनेश्वरः सगुणो भवति देहत्यागेन निर्गुणश्चेति या मूढानां कल्पनास्ति सा वेदादि शास्त्र प्रमाणविरुद्धा चास्ति। तस्मात्सज्जनैर्व्यर्थेयं रीतिः सदा त्याज्येति। शिवम्।

अर्थ—इसलिए जो अज्ञानी मनुष्य यह कहते हैं कि ईश्वर देह धारण करने से सगुण और देहत्याग करने से निर्गुण है यह उनकी कल्पना सब वेद शास्त्रों के प्रमाणों और विद्वानों के अनुभव से विरुद्ध होने के कारण सज्जन लोगों को कभी नहीं माननी चाहिए। परन्तु सबको पूर्वोक्त रीति से ही उपासना करनी चाहिए।

मुद्रक : भाटिया प्रेस, गांधी नगर, दिल्ली-३१

उत्तम पुस्तकें पढ़ें

संध्या भाष्यम	३)
आर्य समाज का अतीता वर्तमान भवानीलाल भारतीय	१)५०
वैदिक भजन माला	५० पैसे
दैनिक सत्संग प्रकाश	८० पैसे
ईश्वर का सच्चा स्वरूप	२)
षोडष कला संपूर्ण दयानन्द	१)
गीता का सच्चा स्वरूप	२)
महर्षि दर्शन उर्दु	२)५०
उपदेश मञ्जरी	२)
सत्यार्थ प्रकाश	३)५०
धरती का स्वर्ग	१)५०
जीवन चरित्र दयानन्द पं० लेखराम जी द्वारा लिखित	१६)

आर्य प्रकाशन

८१४ कूण्डे वालान अजमेरी गेट दिल्ली

आर्य समाज के दस नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

अनुपम

२०×१५ साइज़ में सुन्दर आ[illegible]
तीन की तीन प्रका[illegible]
(१) आर्यसमाज के दस नियम
(२) गायत्री मन्त्र अर्थ सहित हिन्दी,[illegible]
(३) ऋगवेद का अन्तिम सूक्त भाव[illegible]
भेंट देने योग्य मूल्य प्र[illegible]

श्री भवानी लालजी भारत[illegible]
आर्य समाज का अतीत और वर्तमान
अवश्य पढ़ें मूल्य १)५० प्रति

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी द्वारा रचित पुस्तकें
(१) संध्या भाष्यम्
(संध्या के एक-एक मन्त्र की सरल व्याख्या मूल्य ३) प्रति
(२) महर्षि दयानन्द का योग
ऋगवेद आदि भाष्य भूमिका के आधार पर मूल्य २)
नमस्ते प्रदीप
नमस्ते की बड़ी सुन्दर ढंग से व्याख्या है। मूल्य १)
महर्षि दयानन्द के चित्र वाले आकर्षक चाबी के गुच्छे
मूल्य १)५०

पलास्टिक बैज गायत्री मन्त्र मध्य में ओ३म् छपा
मूल्य २०) प्रति सैंकड़ा

हर प्रकार का वैदिक तथा जीवनोपयोगी साहित्य
आप हमसे मंगवा सकते हैं।

आर्य प्रकाशन

८१४ कूण्डे वालान- अजमेरी गेट दिल्ली-६